शासन-निरपेक्ष समाज

[सर्वोदय समाज के निर्माण की योजना]

धीरेन्द्र मजूमदार

●

१९५४

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ, वर्धा का प्रकाशन

सर्व-सेवा-संघ वर्धा के लिए
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

दूसरी बार : १९५४

मूल्य
चार आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

दो शब्द

मैंने कई मौकों पर सर्वोदय सेवकों को यह चेतावनी दी है कि यदि वे भूदान-यज्ञ को केवल भूमि के सम-विभाजन आन्दोलन के रूप में समझेंगे और उन्हें इसकी मूलभूत-क्रांति की धारणा नहीं रहेगी तो हमें उसी तरह से धोखा होगा जिस तरह गांधीजी की स्वराज्य की कल्पना क्या है, इसकी स्पष्ट धारणा देश को न रहने से स्वराज्य-आन्दोलन में हुआ। इस पर से कई साथियों ने मुझे इसका अधिक स्पष्टीकरण करने को कहा। तदनुसार सर्वोदय की विचार-क्रांति क्या है और भूदान-यज्ञ के सिलसिले में सर्वोदय समाज के निर्माण के लिए क्या योजना हो सकती है, यह इस पुस्तिका में बताने की कोशिश की है।

सर्वोदय का पूरा चित्र देने में कहीं-कही ऐसी बातें भी आई हैं जिन्हे मैंने दूसरे स्थानों मे भी कहा है। लेकिन उनके बिना विचार-प्रवाह अपूर्ण रह जाता, इसलिए उचित स्थानों पर उसे भी रखा गया है। जगह-जगह जो प्रश्न होते रहे हैं, उनमें से भी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर इसमें दिया गया है। मुझे आशा है, सर्वोदय-सेवकों की दृष्टि स्पष्ट करने में यह पुस्तिका सहायक होगी। पुस्तिका पढ़कर किसी भाई या वहन को अगर कोई शंका हो या किन्ही बातों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो तो वे मुझे लिखने की कृपा करें।

खादीग्राम, जमुई
जिला मुंगेर

—धीरेन्द्र मजूमदार

विषय-सूची

शासन-निरपेक्ष समाज

: १ :

क्रान्ति की पृष्ठ-भूमि

आचार्य विनोबा भावे द्वारा प्रवर्तित भूदान-यज्ञ ने आज सर्व भारतीय दृष्टि को आकर्षित कर लिया है। केवल भारत ही नहीं, सारे विश्व की नजर इस आन्दोलन पर है। दो साल पहले, जब विनोबाजी सेवाग्राम से दिल्ली के लिए रवाना हुए, तब कौन जानता था कि यह यात्रा एक 'विश्व क्रान्ति' का रूप ले लेगी। केवल विरोधी ही नहीं, साथियों का भी कहना था कि तेलंगाना में जो जमीन मिली वह एक विशिष्ट परिस्थिति के दबाव के ही कारण मिली थी। दूसरे प्रदेशों में जमीन दान में नहीं मिल सकेगी। अगर मिलेगी भी, तो जैसे भारत में साधु-सन्तों को दान देने की सनातन परिपाटी है उसीके अनुसार हजार-पांच-सौ एकड़ जमीन भले ही दान में मिल जाय, लेकिन विनोबाजी, जो कहते है कि वे इस आन्दोलन द्वारा भूमि-समस्या हल करना चाहते है, उसकी सिद्धि में इस यात्रा का कोई महत्त्व नहीं है।

विश्व-क्रान्ति का स्वरूप

धीरे-धीरे लोगों ने देखा कि भूमि का दान मिल रहा है और वह सनातन परिपाटी के परिणामस्वरूप नहीं, बल्कि विशेष व्यापकता के साथ। फिर भी लोगों में शका बनी ही रही कि इस आन्दोलन का कोई नतीजा निकलेगा या नहीं। लेकिन दो साल मे आज सारी दुनिया आन्दोलन की प्रगति देखकर आश्चर्यचकित है। संतों के सामान्य दान के रूप मे सोचने की शुरुआत से लोगों ने इसे इस युग के एक बहुमत व्यापक परोपकारी

भूदान-आन्दोलन—धर्म-चक्र-प्रवर्तन

आचार्य विनोबा भावे ने अपने आंदोलन को 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' कहा है। उनका कहना है,"सामान्य धर्म-प्रचार और क्रांति या 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' ये दो भिन्न-भिन्न वस्तुएं हैं। सामान्य धर्म तो ऋषि और संत लोग हमेशा समझाते रहते हैं। इसलिए सर्वसामान्य धर्म-प्रचार एक बात है और जमाने की मांग क्या है, यह पहचान कर धर्म-विचार उसके साथ जोड़ देना दूसरी बात है। संत और ऋषि मामूली धर्म-प्रचार तो हमेशा करते रहते हैं, परन्तु उससे धर्म-चक्र-प्रवर्तन नहीं होता है। जहां परि-स्थिति के साथ धर्म-भावना जुड़ जाती है वहा वह लोगों के दिल को छूती है। इससे बडी शान्ति पैदा होती है। और इसीसे धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है।" अर्थात् धर्म-प्रचार से सुधार होता है और धर्म-चक्र-प्रवर्तन से क्रांति होती है।

जमाने की मांग

वस्तुतः जमाने की माग क्रांति की पुकार हुआ करती है। युग-युग में हमेशा ऐसे जमाने आते रहे है जिस समय समाज का सारा ढांचा तोड़ कर नया ढाचा बनाना अनिवार्य हो जाता है। ऐसे जमाने मे सामाजिक क्रांति की आवश्यकता होती है। मानव समाज के लिए महान् कल्याण-कारी समाज-पद्धति भी काल-क्रम में महान् विनाशकारी पद्धति बन सकती है। ऐसी दशा में सारे समाज से एक सहज पुकार उस पद्धति को तोड़कर नई पद्धति कायम करने की होती है। उसीको जमाने की मांग या क्रांति-कारी परिस्थिति कहते हैं।

परिवर्तन की प्रक्रिया

एक सामान्य मिसाल से क्रांति की आवश्यकता स्पष्ट रूप से समझ में आ जायगी। मान लें कि किसी समय एक परिवार ने अपनी सुख-सुविधा और सुरक्षा के लिए विचारपूर्वक अत्यन्त सुविधाजनक मकान बनाया। क्रमशः स्थिति में दो प्रकार का परिवर्तन हुआ। काल-क्रम से पुराना होने के कारण मकान की ईंट में लोनी लगी, लकड़ी आदि सामग्री सड़ी और

पीढ़ी-दर-पीढ़ी पारिवारिक परिस्थिति में हेर-फेर हुआ। शुरू-शुरू में लोग काफी दिन तक मकान की मरम्मत करते रहे और पारिवारिक स्थिति के बदलाव के साथ-साथ मकान की स्थिति में भी रद्दोबदल करते रहे। आखिर एक समय ऐसा आया कि सड़न के कारण घर टूटकर गिरने लगा। रहनेवालों की जान को खतरा हुआ। रद्दोबदल करते-करते उसकी हालत ऐसी हो गई कि नई परिस्थिति में उसके अन्दर गुजारा करना असंभव हो गया। ऐसी हालत में लोग उस मकान को गिराकर नया मकान बनाते हैं, क्योंकि अब उसमें सुधार या मरम्मत की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

समाज के मूल्यांकनों में क्रान्ति

इसी तरह मनुष्य के कल्याण के लिए समाज का कुछ ढांचा बनाया जाता है। तात्कालिक परिस्थिति के अनुसार कुछ धारणाएं बनती हैं तथा वस्तुओं का मूल्यांकन किया जाता है। यह सब इसलिए होता है कि मानव-समाज सुख और शांति से जीवन बिता सके। समय पाकर इन सबके रूढ़ि बन जाने से इस ढांचे में तथा धारणा और मूल्यांकन में विकृति पैदा होती है। दूसरी ओर सतत परिवर्तनशील प्रकृति के प्रभाव से समाज की परि-स्थितियों का निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। दोनों मिलकर ऐसी स्थिति पैदा करते हैं जिससे समाज का पुराना ढांचा, जीवन की धारणाएं तथा मूल्यांकन मौजूदा बदली हुई स्थिति में सुखकारी न होकर संकटकारी हो जाते हैं। ऐसे संकट से ग्रस्त होकर समाज की अन्तरात्मा एक मामूली परि-वर्तन की पुकार करती है। सारे समाज की अन्तरात्मा की पुकार टल नहीं सकती। यही पुकार मूर्तिमान होकर क्रांति का रूप लेती है।

: २ :

भू-दान की सही भूमिका

अतएव भूमिदान-यज्ञ पर एक क्रांतिकारी आंदोलन की पृष्ठ-भूमि में विचार करना होगा। विनोबाजी ने कहा है कि धर्म-विचार जब

जमाने की मांग के साथ जुडा हुआ होता है, तब क्रांति यानी धर्म-चक्र-प्रवर्तन हो जाता है। हर क्रांति की द्रुत प्रगति भी इसी कारण से हुआ करती है, क्योंकि जमाने की मांग के कारण सारे मानव-समाज की दृष्टि ऐसे आंदोलन की ओर सहज खिंच जाती है। लेकिन जहां यह बात क्रांति को प्रगति देने के लिए एक शक्ति है वहां यही बात उसी क्रांति के लिए खतरा भी है। इसलिए जरूरी है कि भूमिदान आंदोलन में कार्यकर्त्ता अपने काम के साथ क्रांति पर के खतरे के बारे में निरन्तर जागृत रहें।

रूढ़ि

शुरू-शुरू में कोई क्रांतिकारी द्रष्टा जमाने की माग को पहचान कर उसे पूरा करने का एक मार्ग उपस्थित करता है। प्रकृति के निरन्तर प्रगतिशील होने के कारण क्रांतिकारी मार्ग हमेशा नया होता है और उसकी मिसाल इतिहास में नही हुआ करती। यही कारण है कि जब क्रांतिकारी पुरुष नई बातें करते है तब यद्यपि साधारण जनता उसे समझ लेती है, पर पढ़े-लिखे विद्वानों को उनकी बातें नही भातीं; क्योंकि पंडितों की बुद्धि प्रायः शास्त्रों की जिल्द के अन्दर गिरफ्तार रहती है और वे अपनी किताबों में लिखे हुए सूत्र के अनुसार ही बातें समझ पाते है। इसलिए वे प्रारम्भ में क्रांतिकारी की बातों की हंसी उडाते हैं, दूसरी ओर क्रांति के जमाने की मांग का सही पूरक होने के कारण जनसाधारण का दिल सहज ही उसकी ओर दौड़ता है। लेकिन प्रकृति से रूढ़िग्रस्त होने के कारण उनकी बुद्धि साधारणतः पंडितों की ओर ही झुकती रहती है।

क्रान्ति द्रष्टा की गति

इस प्रकार क्रांतिकारी पुरुष शुरू-शुरू में समाज में साधारण जनता के दिल को आकर्षित करते हुए भी अकेला ही चलता है। लेकिन दिल साथ होने के कारण जल्दी ही वह जनता को अपनी ओर खीचकर उसे क्रांतिकारी मार्ग पर चलाने लगता है। फिर वह प्रगति जब व्यापक हो जाती है तो पढ़े-लिखे विद्वानों की भी दृष्टि आकर्षित होती है। उनमें से दो-एक ऐसे भी होते है जो जमाने की समस्याओं के समाधान के लिए अपने पाडित्य

करीब वही हुआ। गांधीजी के अनुयायियों द्वारा स्वावलंबी समाज-व्यवस्था के सिद्धांत का आग्रह छोड़कर विकेंद्रीकरण की बात करने के कारण जन-स्वावलंबन के आधारपर सच्चे लोकतंत्र के रूप में ग्रामराज्य कायम न होकर एक विराट् केन्द्रित सत्ता के नीचे सारी प्रजा दबती जा रही है। यह सही है कि हम लोग लोककल्याणकारी राज्य (वेलफेयर स्टेट) की बात करते हैं और सोचते हैं कि इसीसे गणराज्य सच्चा होगा, लेकिन तानाशाही सरकार भी तो लोककल्याणकारी हो सकती है, बल्कि लोककल्याणकारी होने के कारण ही प्रारम्भ मे जनता तानाशाही को स्वीकार भी करती है। इस तरह किताबों के सूत्र में नई क्रांति की बात ढूढने की चेष्टा से क्रांति इस प्रकार विपथगामी हो सकती है। उसकी मिसाल हमने अभी-अभी भारतीय आदोलन में देखी।

भूमिदान पुनर्विभाजन नहीं

उसी तरह विनोबाजी ने भूमिदान-यज्ञ आदोलन चलाया और विद्वानो ने जब इसमें क्रांतिकारी स्वरूप को देख लिया तव वे पुरानी प्रचलित किताबो के पन्नों को पढकर इसे भूमि के पुनर्विभाजन के रूप मे समझने लगे। यह समझने की आवश्यकता है कि जैसे विकेंद्रीकरण-मात्र से गाधीजी का स्वावलम्बन नही होता उसी तरह भूमि के पुनर्विभाजन-मात्र से ही विनोवाजी का भूमिदान-यज्ञ नही होता है। भूमि का वितरण तो जापान और चीन मे भी हुआ है, लेकिन क्या वहां भूमिदान-यज्ञ के उद्देश्य के अनुसार सर्वोदय समाज यानी शासन तथा शोषण-रहित जनतंत्र कायम हो सका है? वहां तो उत्कट तानाशाही का ही संगठन हुआ है। अगर भूमिदान-यज्ञ को केवल भूमि-वितरण के ही रूप में देखा जाय और उसी दिशा में ही कार्यकर्ता आगे बढ़ें, तो क्या भारत में भी तानाशाही का खतरा नही आ सकता?

स्वराज्य आन्दोलन में हमारी भूल

मैंने शुरू मे कहा है कि इस यज्ञ के प्रति सारे भारत की दृष्टि आकर्षित हुई है। केवल आकर्षित ही नही हुई, बल्कि सभी श्रेणियों और सभी

अपने ढंग के स्पष्ट थे, परिस्थिति पर कब्जा कर लिया, और उन राष्ट्रवादी सेवकों पर, जिनकी दृष्टि धूमिल थी, हावी हो गए। हम भी, उनके द्वारा क्रांति सधेगी, यह समझ कर निश्चेष्ट रहे।

फिर जब हमने देखा कि हमारे वे साथी, जिन्हें हम अपने स्ववर्गी समझते थे, लेकिन जिनके सिद्धांत, धारणा तथा दृष्टि वस्तुतः पृथक थी, हमारी धारणा के अनुसार मुल्क के राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढाचों में आमूल परिवर्तन न कर पुराने ढाचे को ही सचालित कर रहे हैं, तो हम उनकी शिकायत करने लगे। लेकिन शिकायत का कोई कारण नही था। वह स्वाभाविक था। क्रांतिकारी जब आदोलन चलाता है और आदोलन के शुरू में जब ऐसा कार्यक्रम लेना पडता है, जिसको करने के लिए हर तबके के लोगों का आग्रह होता है तो वह सबके साथ संयुक्त मोर्चा बनाता है। लेकिन ऐसी हालत में उसे निरन्तर जाग्रत रहना पड़ता है ताकि उसकी क्राति की धारणा धूमिल होकर वह प्रतिक्रातिकारी शक्ति के हाथ में न चली जाय। हमने स्वराज्य के क्रातिकारी आंदोलन के समय ऐसी चौकसी नही रखी। इसलिए आज मुल्क पर प्रतिक्रियावादी शक्ति हावी हो गई।

भूमिदान में सावधानी

जिस तरह गांधीजी ने स्वराज्य के बारे में स्पष्ट धारणा मुल्क के सामने रखते हुए भी, पहले देश का सारा ध्यान विदेशी राज्य हटाने पर केंद्रित करने को कहा, और ऐसा कहना एक व्यावहारिक क्रांतिकारी के लिए स्वाभाविक भी था, उसी तरह आज विनोबाजी भी अपनी आर्थिक तथा सामाजिक क्राति की स्पष्ट धारणा देश के सामने रखने पर भी पहले भूमि-प्राप्ति तथा भूमि-वितरण के काम में सारी शक्ति केंद्रित करने के लिए 'एकहि साधे सब सधे' की बात कह रहे हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि जबतक पहला कदम जम न जाय तबतक आगे का कदम उठाना कठिन है। और बहुमुखी कार्यक्रम चलाने से शक्ति बिखर कर क्रांति मे कमजोरी आ सकती है। लेकिन आज अगर विनोबाजी की क्रांतिकारी धारणा के अनुसार भविष्य की समाज-रचना के सिद्धात को माननेवाले कार्यकर्त्ता आगे का कदम

तथा भावी राष्ट्र-निर्माण के बारे में उसी तरह से विचार तथा विवेचन किये विना केवल भूमि-दान की ही वात सोचते रहेंगे, जिस तरह हम स्व-राज्य आदोलन के समय सोचते रहे, तो इस बार भी हम चूकेंगे और एक बार और प्रतिक्रियावादी शक्तिया सगठित होकर हमारी क्रांति को उलटे रास्ते ले जायगी। जिस प्रकार अग्रेजो को हटाना कई प्रकार के लोगो के लिए इष्ट था, उसी प्रकार भूमि का पुनर्विभाजन भी कई सिद्धात, दृष्टि तथा नीयत वालों के लिए भी इष्ट हो सकता है। जमीदारी प्रथा सामन्तवादी प्रथा का ही भग्नावशेष है। हमने इतिहास में देखा है कि सामंतवाद को खत्म करनेवाले पूजीवादी ही थे। आज भी पूजीवादी जमीदारी प्रथा को खत्म ही करना चाहते है, क्योंकि जमीदारों के रहते भूमि पर पैदा हुए कच्चे मालो पर सीधा अपना ही नियत्रण रखने में उन्हे दिक्कत हो सकती है। इसलिए वे भूमि-दान-यज्ञ में शामिल हो सकते है। चीन के कम्युनिस्ट तानाशाही राज्य-व्यवस्था को ही मानते है, लेकिन उन्होने भूमि का पुनर्विभाजन किया अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही। अतः इस देश के कम्युनिस्ट अपने पार्टी-हित की दृष्टि से चाहे इस यज्ञ से भले ही घबराए, लेकिन सिद्धांत की दृष्टि से वे भी इस पुनर्विभाजन कार्य में शामिल हो सकते है। ऐसे भी काफी लोग हो सकते है जो औद्योगिक केन्द्रीकरण को मानते हुए भी देहाती गरीबी की राहत की दृष्टि से भूमि के पुनर्विभाजन के कार्यक्रम में शामिल होंगे। जाती-यतावादी तथा सम्प्रदाय-वादी भी भूमि-वितरण के साथ हो सकते है। ऐसे जातीयतावादी घोषित दल आदि नामो से सगठित हो भी रहे है। आज जन-सघ आदि साम्प्रदायिक प्रतिक्रियावादी भी इसके साथ है। जनरल मैक-आर्थर कोई सर्वोदयवादी तो नही हैं, लेकिन उन्होने भी तो जापान में भूमि का पुनर्विभाजन किया।

इस तरह जहाँ एक ओर कोई नया धर्मविचार जमाने की मांग के साथ जुड़ा न होने से यह सामान्य ऋषि-वाक्य होकर कुछ विवेकी पुरुषों का व्यक्तिगत आचारमात्र ही रह जाता है, उसमें आम जनता के शामिल न होने के कारण उस विचार में कोई शक्ति नही रहती है, वहां दूसरी ओर हर

किस्म के लोगों के शामिल होने के कारण क्रांति की दृष्टि धूमिल होने की संभावना रहती है। इसलिए मैंने कहा है कि जमाने की मांग के साथ एक-रसता जहां क्राति के लिए एक शक्ति ह वहां वही बात उसके लिए खतरा भी हो सकती है। अतएव जो लोग इसे क्रातिकारी आन्दोलन के रूप मे देखते हैं, उन्हें यज्ञ के भौतिक आधार के बारे मे विचार करना होगा। इस विचार का प्रचार मुल्क भर में करना होगा ताकि देश की दृष्टि साफ हो सके।

इसका मतलब यह नही है कि भूमिदान मे कार्यकर्ता सब श्रेणी के लोगों को मिलाकर काम न करे। अधिक-से-अधिक लोगों को बिना खीचे कोई आदोलन नही चलता है। कहने का मतलब सिर्फ इतना ही है कि वे अपनी क्रांति की दृष्टि स्पष्ट रखे। हरेक तबके में लोगों के सामने उस विचार को साफ तौर से पेश करें। किताबों के सूत्र में से अगर कोई बात निकालनी हो तो उसकी स्पष्ट और क्रातिकारी परिभाषा इस ढग से करे कि जनता की समझ में गलतफहमी न रहे, ताकि दूसरी दृष्टि तथा सिद्धात के लोग अपने उद्देश्य की सिद्धि मे उसे इस्तेमाल न कर सके।

: ३ :

दंड-शक्ति

विनोबाजी भूमिदान आंदोलन को अहिंसक समाज-रचना का पहला कदम कहते हैं। अहिंसक समाज का मतलब है हिंसा-रहित समाज। अतः हमें मूलतः समाज से हिंसा हटाने की बात सोचनी होगी; लेकिन हिंसा स्वतः कोई चीज नही है। वह शोषण-वृत्ति का नतीजा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करना चाहता है और अगर वह निर्विरोध शोषण करने में सफल होता है तो वह खामखा हिंसा नही करता। एक मुल्क दूसरे मुल्क का शोषण करना चाहता है और निर्विरोध शोषण करने में समर्थ होता है तो खामखा युद्ध नही छेड़ता। इस तरह हम देखेंगे कि साधारणतः शोषण की वृत्ति से ही हिंसा की शुरुआत होती है।

अतएव अहिंसक समाज-रचना के लिए शोषण-हीन समाज-रचना की आवश्यकता है। प्रश्न यह है कि शोषण होता किस चीज का है? साधारणतः श्रम का यानी शरीर का शोषण ही शोषण माना जाता है। अर्थात् लोग यह मानते हैं कि हिंसा केवल शरीर पर होती है। लेकिन मनुष्य का केवल शरीर ही नहीं होता। उसमें आत्मा भी होती है। अतः विचार करने की आवश्यकता है कि शरीर के साथ-साथ आत्मा पर भी शोषण हो सकता है।

मनुष्य की आत्मा पर हिंसा उसकी आजादी छीनने से होती है। वस्तुतः मनुष्य की आजादी छीननेवाला सबसे बडा यन्त्र शासन होता है, अर्थात् शासन-यन्त्र मनुष्य की आत्मा पर हिंसा का कारण होता है; क्योंकि किसी व्यक्ति पर जिस हद तक शासन का दंड रहेगा उस हद तक उसकी आत्मा कुंठित रहेगी। अतः अहिंसक समाज-रचना के लिए प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि दुनिया में दंड-हीन समाज यानी स्वराज्य कायम हो।

वस्तुतः दुनिया की आज की मुख्य समस्या स्वराज्य की समस्या है। साम्यवादी, फासिस्टवादी, लोकतन्त्रवादी, किसी नाम से भी पुकारा जाय, आज की दुनिया में हर मुल्क में उत्कट तानाशाही ही चल रही है। वास्तविक लोकशाही का अस्तित्व कहीं नहीं दिखाई देता। जहां कहीं जनतन्त्र का नाम है वहां भी जनता की वैसी ही हालत है जैसे कि कचहरी से अपने *'हक' की 'डिग्री' पाते हुए भी किसी किसान को अपनी जमीन का कब्जा न* मिला हो।

प्रागैतिहासिक युग में

मानव-इतिहास के प्रथम युग में मानव झुंड में रहते थे। सहयोगिता के आधार पर जिन्दगी का साधन पैदा करके स्वच्छंद विचरते थे। क्रमशः समाज में प्रतियोगिता और उसके फलस्वरूप संघर्ष पैदा हुआ। स्वच्छंद समाज के इस संघर्ष ने धीरे-धीरे मानव-समाज के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया। अस्तित्व कायम रखना प्रकृति की मूल-वृत्ति होने के कारण

मनुष्य अपने अस्तित्व का खतरा बर्दाश्त नहीं कर सकता था। वह इस स्थिति से निकलने का उपाय सोचने लगा।

विभिन्न शक्तियों की विकास-क्रांति

पुराणों की कथा के अनुसार मनुष्य आपसी संघर्ष से परेशान होकर आत्मरक्षा की नीयत से ब्रह्मा के पास पहुंचा। ब्रह्मा ने मनुष्य पर कृपा करके उनपर राज्य करने के लिए मनु को संसार में भेज दिया, जिससे वह संघर्ष की चौकीदारी कर सके। इस तरह संसार में प्रतिद्वंद्विता के बीज से राजदंड की सृष्टि हुई। संघर्षकाल के लिए एक मध्यस्थ के रूप में उन्हें अपनी जिम्मेदारी सुचारु रूप से चलाने के लिए सैनिक शक्ति की सृष्टि करनी पड़ी। सैनिक बल से पुष्टि पाकर धीरे-धीरे दंडशक्ति अधिकतर संगठित और बलशाली होने लगी। नतीजा यह हुआ कि यह शक्ति क्रमशः जनशक्ति पर हावी होती गई। जनता भी सहूलियत के मोह से अपनी व्यवस्था और संचालन के लिए उसी राजदंड पर भरोसा करने लगी। जनता की इस कमजोरी का फायदा उठा कर दंड-शक्ति उसपर सिर्फ हावी ही नहीं हुई, बल्कि उसका निर्दलन भी करने लगी।

इस प्रकार एक मध्यस्थ के रूप में जन्म लेकर राजशक्ति यानी दंडशक्ति जन-स्वतन्त्रता का निर्दलन करके संसार पर अपनी सत्ता कायम करने लगी। मनुष्य इस स्थिति से फिर परेशान हुआ। जिस शक्ति को उसने अपना रक्षक मानकर पैदा किया था वही शक्ति उसकी भक्षक होकर उसकी आजादी भी छीनने लगी। फिर से मानव-समाज ने इस स्थिति में से अपने को निकालना चाहा और दुनिया में राजतंत्र को खत्म करके लोकतंत्र कायम करने के लिए एक महान क्रांति की। हमने देखा कि फ्रांस में एक विराट विस्फोट हुआ और सारी दुनिया में वह फैल गया। दुनिया में राजतंत्र खत्म हो गया।

इस क्रांति की चेष्टा में मनुष्य ने एक महान भूल की। उसने राजाओं को खत्म किया, लेकिन वे जिस दंड-शक्ति के मालिक थे उसकी आवश्यकता को खत्म नहीं किया। सिर्फ राजा के हाथ से उसे छीनकर पार्लमेंट के नाम

से जनता के प्रतिनिधियो की संस्था बनाकर उसके हाथ मे सौप दिया और सोचा कि अब हमारे अपने आदमी के हाथ में दंड है, इसलिए कोई खतरा नही। देहात में एक कहावत है, "सैयां भये कोतवाल कि अब डर काहे का।" अर्थात् अब चैन से सोया जा सकता है। जनता भी प्रतिनिधियों को चुनकर चैन से सो गई, किन्तु 'प्रभुता पाय काहि मद नाही' इस तत्व को वह भूल गई। निश्चित जनता की सुव्यवस्था और सचालन के बहाने ये नये दंड-धारी अपनी विशाल शक्ति को लेकर जन-जीवन के अधिक-से-अधिक हिस्से पर कब्जा करने लगे। नतीजा यह हुआ कि राजतंत्र के समय से लोकतत्र में जनता पर दड का दखल बढ़ता गया यानी उसकी आजादी घटती गई। अर्थात् उसकी आत्मा अधिक कुंठित और निर्दलित होने लगी।

आर्थिक क्रांति

जिस समय ससार में यह राजनैतिक क्रांति चल रही थी, ठीक उसी समय आर्थिक क्षेत्र मे एक महान क्राति हुई। 'जेम्स वाट' द्वारा वाष्प-शक्ति के आविष्कार के साथ-साथ आर्थिक उत्पादन के तरीके मे क्रातिकारी परिवर्तन हुआ। पहले दस्तकार अपने छोटे-छोटे औजार लेकर स्वतन्त्रता पूर्वक जिन्दगी के साधन पैदा करते थे, उसका उपभोग करते थे और अतिरिक्त सामान स्वतन्त्र रूप से बेचकर अपनी दूसरी आवश्यकताओ की भी तृप्ति कर लेते थे। उत्पादन की प्रक्रिया बदल कर केंद्रित हो जाने के कारण सारी जनता का आर्थिक-नि:शस्त्रीकरण हो गया। वह अब स्वतन्त्र रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर सकती थी। उसे जिन्दा रहने के लिए अब पूर्ण रूप से कारखाने या पूजीपति का भरोसा करना पड़ा। आर्थिक जिन्दगी पर कब्जा करने के कारण इन पूजीपतियो ने स्वभावत: राजदंड पर भी अपना कब्जा जमा लिया। नतीजा यह हुआ कि एक ही हाथ मे दंड-शक्ति और उत्पादन-शक्ति दोनो होने के कारण वे जनता का अधिक शोषण करने लगे। यह शोषण सिर्फ आत्मा तक ही मर्यादित न होकर शरीर का भी होने लगा; क्योंकि अपनी स्वतन्त्रता से उत्पादन न कर सकने के कारण उत्पादक

श्रमिकों को अपना श्रम कारखानेदारो के हाथ में बेचने पर मजबूर होना पड़ा। श्रमिकों की मजबूरी से पूंजीपति उसका नाजायज फायदा भी उठाने लगे।

इस तरह पूंजीवादी लोकतत्र में जनता की हालत राजतंत्र से भी अधिक खराब हो गई; क्योंकि राजतत्र में जहा जनता की आत्मा ही कुंठित होती थी, वहां लोकतंत्र मे जनता के शरीर और आत्मा दोनों का शोषण होने लगा, सो भी पहले से अधिक पैमाने पर। इससे भी ऊब कर मनुष्य ने बाद में जो क्रांति की, उससे उसकी आत्मा और अधिक कुंठित हो गई। पहले जिस तरह राजाओं को हटा कर राजदंड को पार्लामेंट के हाथ में डाल दिया उसी तरह अब केवल राजदड ही नही, बल्कि उत्पादन-यंत्र भी उसी के हाथ में सौंप दिया जिसके हाथ मे राजदंड था। जब दमन तथा उत्पादन के साधन एक ही गुट के हाथ मे आ गये, तब उसके लिए जनता का पूर्णरूप मे निर्दलन करना आसान हो गया। दंड का दबाव जनता पर और अधिक हो गया।

कहावत है, 'ज्यों-ज्यो इलाज किया मर्ज बढता ही गया।' मनुष्य जैसे-जैसे आजादी की चेष्टा करता गया, वैसे-वैसे उसके गले में शासन का फंदा बढता गया। कारण यह है कि, यद्यपि मनुष्य ने इस चेष्टा में बड़ी-बड़ी क्रांतियां की, भीषण आत्म-बलिदान भी किया, लेकिन उसने एक बुनियादी भूल की। उसने यह नहीं समझा कि उसके सिर पर दंड गिरता है, दंड चलानेवाला नही। इस भूल के कारण उसने यह समझा कि उसको तकलीफ दंड चलानेवालों के कारण हो रही है, न कि दंड के कारण। इसीलिए उसने हमेशा चलानेवालों पर ही हमला किया और दंड को केवल सुरक्षित ही नहीं रखा, बल्कि उसका कलेवर बढाता ही गया। गांधीजी ने मानव-समाज की दृष्टि इस बुनियादी भूल की ओर आकृष्ट की। उन्होंने बताया कि मनुष्य खुद दोषी नही होता, पद्धति ही किसी सुख या दुख का कारण होती है। अगर दंड के आघात से तकलीफ होती है तो दंड को न हटाकर दंड चलानेवालो को बदलने से कोई लाभ नही होता। अतएव अगर मनुष्य को शोषण-

मुक्त होना है तो उसे दुनिया में एक दंडहीन यानी शासनहीन समाज कायम करना होगा।

जनता का स्वराज्य : एक प्रश्न ?

लेकिन प्रश्न यह है कि क्या दुनिया मे ऐसा दंडहीन समाज प्रत्यक्ष दीख सकेगा ? शायद नही, क्योंकि पूर्ण स्वराज्य यानी शासनहीन समाज एक आदर्श है । आदर्श तो रेखागणित के विन्दु जैसा होता है । उसकी *धारणा की जा सकती है। वह दिखाई नही देता है। लेकिन यद्यपि यथार्थ* रेखागणित का विन्दु दिखाई नही देता है, तो भी हमें जो कुछ दिखाई देता है, यानी जितनी इमारतें, सड़क-पुल, कल-कारखाने आदि है, वे सब-के-सब रेखागणित के बिन्दु के आधार पर ही बने हुए है। अगर कोई इजीनियर इन तमाम प्रत्यक्ष चीजो के निर्माण में उस विन्दु का आधार छोड़ दे तो उपर्युक्त चीजो में से एक भी खड़ी न हो पायगी ।

अतएव हमको भविष्य के समाज-निर्माण के लिए पूर्ण दड-हीन समाज के *आधार पर एक व्यावहारिक रचना करनी होगी* । अगर पूण शासनहीन समाज केवल आदर्श है तो निस्सदेह हम कितना ही आदर्श के नजदीक क्यो न पहुंचे, किसी-न-किसी रूप में तथा हद मे शासन-दंड रह ही *जायगा। फिर जनता का स्वराज्य कैसे हो, यह प्रश्न है।*

दण्ड-निरपेक्ष समाज

इस प्रश्न का हल दण्डहीन समाज के आदर्श पर एक दंड -निरपेक्ष समाज बना कर हो सकता है, अर्थात् शासन-यंत्र के अवशेष रहते हुए भी मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज की मौलिक व्यवस्था और उसका सचालन तथा नित्य जीवन की रक्षा दड-शक्ति के बाहर स्वतन्त्र जन-शक्ति के आधार पर संगठित कर सकता है । दड-शक्ति का अस्तित्व मनुष्य के लिए उतने ही भर के लिए होगा जितने भर के लिए रेलगाड़ी में जंजीर होती है, अर्थात् साधारणतः मनुष्य को दड-शक्ति की आवश्यकता नहीं होगी । सयोगवश अगर कभी जरूरत पड़ी तो उसकी शरण ले सकेगा।

गांधीजी रामराज्य की बात करते थे। विनोबाजी कहते हैं, रामराज्य यानी ग्रामराज्य। ऐसे रामराज्य में जन-कल्याण का काम जनता द्वारा यज्ञ-कार्य से संपादित होता था। यज्ञ-पुरोहित यानी जन-नायक मन्त्रोच्चार से गण-देवता का आवाहन करता था और सारे जन-गण उस आवाहन के अनुसार उस यज्ञ मे आहुति अर्पण करते थे। ऐसे ही यज्ञ से यानी जन-शक्ति द्वारा समाज का सारा कल्याणकारी कार्यक्रम चलता था। जब कभी यज्ञ-भंग करने के लिए ताडका का आविर्भाव होता था, तभी वे रेलगाड़ी की जंजीर के जैसा दंड-शक्ति का इस्तेमाल करते थे।

वस्तुतः दंड-निरपेक्ष स्वराज्य कायम हो जाने की स्थिति में भी कुछ केंद्र-शक्ति की भी आवश्यकता होगी, स्वावलम्बी ग्राम इकाइयों को एक-सूत्र में बांध रखने के लिए। लेकिन इसका स्थान क्या होगा, यही प्रश्न है? एक छोटे-से उदाहरण से स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

पूर्ण प्रफुल्लित फूलों की माला में एक सूत्र की आवश्यकता होती है। लेकिन अच्छी माला उसी को कहेंगे, जिसमें यह सूत्र दिखाई न दे। माला में जब सूत्र दिखाई देने लगता है तो समझना चाहिए कि वह माला सूख रही है। उसी तरह दंड-निरपेक्ष स्वराजी समाज में स्वयंपूर्ण ग्राम-इकाइयों को एक सूत्र में बांधने के लिए शासन की आवश्यकता होगी, लेकिन समाज के नित्य जीवन में वह दिखाई न देगी अर्थात् उसके अस्तित्व का अनुभव न होगा। अगर ऐसा हुआ तो समझना चाहिए कि वह स्वराज्य सूख रहा है।

अब सवाल यह है कि समाज पर से दंड-शक्ति का निराकरण कैसे हो? आज दुनिया में संपूर्ण रूप से दंड-सापेक्ष समाज चल रहा है। जनता पर दंड-शक्ति का कब्जा ऐसी कडाई से बना हुआ है कि वह जरा भी अपने मन से इधर-उधर नही कर सकती। हमारी क्रांति की प्रगति पर विचार करते समय जनता को इस वज्रमुष्टि से निकालने के कदमों पर पहले विचार करना होगा।

: ४ :

लोक-शक्ति का निर्माण और कानून

आज की दुनिया किसी-न-किसी शक्ल की तानाशाही के नीचे दबी है। ऐसा कोई जादू नही हो सकेगा जिससे मानव-समाज उससे एकाएक बाहर निकल सके । संसार मे आज सारा मानव-समाज संपूर्ण रूप से दंड-सापेक्ष हो गया है। एकाएक इस दंड-शक्ति का उन्मूलन करना संभव नही दीखता । अतः शासनहीन समाज के आदर्श के आधार पर दंड-निरपेक्ष समाज कायम करने के लिए पहली आवश्यकता यह है कि इस दंड-शक्ति की एकाधिपत्यता घटाई जाय, यानी उसपर जनता की ओर से नियत्रण हो ।

वस्तुतः संसार मे लोकतंत्र के नाम से आज जो चीजें चल रही हैं, वे वास्तविक लोकतंत्र नही हैं। जनता से मत (Vote) लेकर कुछ लोग शासन करने चले जायं इतने मात्र से ही जनतत्र नही होता । यही कारण है कि गाधीजी ने स्वराज्य की परिभापा करते हुए कहा था कि कुछ व्यक्तियो द्वारा अधिकार प्राप्ति-मात्र मे ही स्वराज्य नही होता है, वल्कि स्वराज्य इस वात मे निहित है कि अधिकार के दुरुपयोग पर जनता के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा विद्रोह करने की ताकत हो।

अधिकार का मोह

लोग कहते हैं कि जब जनता समझ-बूझ कर ऐसे लोगों को, जो अपनी जिन्दगी जनहित के काम में ही खपाते हैं, वोट दे तो ऐसे लोगों द्वारा अधिकार प्राप्त होने पर भी दु पयोग का खतरा कहा है ? ऊपर-ऊपर विचार करने में यह वात ठीक लगती है, लेकिन मानव-चरित्र की गहराई मे जाने पर अधिकार के दुरुपयोग की सभावना स्पष्ट हो जायगी। आज के अधिकांश समाज-शास्त्री कहते हैं कि संपत्ति अस्थिर और स्वार्थ अजेय है। मनुष्य के कब्जे में एक बार संपत्ति आने पर वह उसे छोड़ना नहीं चाहता, बल्कि

वृद्धि ही करना चाहता है। अतः जबरदस्ती ही इस संपत्ति की छुडाया जा सकता है। लेकिन साथ-साथ वे इस बात को मानते हैं कि जो लोग अधिकार पा जायंगे, वे सहज विवेक-बुद्धि से उस अधिकार को अपने-आप सूखने देंगे। लेकिन मनोविज्ञान के अध्ययन में वे एक मौलिक भूल करते हैं। अगर संपत्ति न छोड़ने की वृत्ति मनुष्य-चरित्र में अन्तर्निहित है तो अधिकार न छोड़कर उसमें वृद्धि करने की वृत्ति उससे अधिक बलवती है। मानव-समाज के इतिहास की ओर गौर से देखा जाय तो विवेक-बुद्धि से संपत्ति छोडने की मिसालें अगणित हैं। लेकिन अपने-आप अधिकार छोड़ने की मिसाल नहीं के बराबर है। यही कारण है कि भारत के महान् मनोविज्ञान की किताबों में, पुराणों में यह लिखा है कि त्रिलोक में सबसे अधिक तपस्या करनेवाले को ही इंद्रासन मिलता है। लेकिन इंद्रासन मिलते ही वह दूसरे की तपस्या भंग करने की चेष्टा मे लगे रहते हैं। यह कहानी मानव-समाज के सनातन चरित्र का एक रूपक मात्र है।

अतः यह स्पष्ट है कि जो भी अधिकार में जायगा, चाहे वह महान लोकप्रिय व्यक्ति या दल हो, अपने हाथ में अधिकार को हमेशा कायम करने की चेष्टा करेगा। इस चेष्टा में यह स्वाभाविक है कि वह दूसरे किसी के अधिकार प्राप्ति की चेष्टा को दबा देगा। दबाने की प्रक्रिया हमेशा जायज हो हो, यह कोई जरूरी नही है। इस दमन-वृत्ति के कारण अधिकार के दुरुपयोग की समस्या हमेशा बनी ही रहेगी। ऐसी हालत मे यह आवश्यक है कि जन-शक्ति इस तरह संगठित रहे कि जनता मे विद्रोही शक्ति निरन्तर कायम रह सके ताकि मौका पड़ने पर वह उसे तत्काल इस्तेमाल कर सके। हो सकता है कि एक लम्बे अरसे तक इसकी आवश्यकता न हो—फिर भी किसी समय भी आवश्यकता हो सकती है, इस बात का ध्यान रखकर जनता की उस शक्ति की उपासना निरन्तर करते रहना चाहिए। आखिर रेलगाड़ी में हमेशा खतरा नही रहता, लेकिन खतरे की जंजीर तो हमेशा ही रखनी पड़ती है, क्योंकि उसकी आवश्यकता कभी भी हो सकती है।

शिव कहीं नहीं है

अब प्रश्न यह है कि जनता में यह विद्रोही शक्ति कैसे कायम रहे? पुराण में शिव-शक्ति की बात कही गई है। जहा समाज में संगठन और सचालन के लिए इन्द्र की आवश्यकता है वही गणतंत्र की रक्षा के लिए शिव का रहना भी जरूरी है। शिव वह है जो महान तपस्वी होने पर भी इन्द्रासन का इच्छुक नही है—जो गण के बीच में गण-रूप में ही रहता है और गण को तकलीफ होने पर ताडव करता है। उसी प्रकार अगर समाज की सुव्यवस्था के लिए एक अधिकारी की आवश्यकता है तो स्वराज्य की रक्षा के लिए एक गणनायक की भी आवश्यकता है। आज दुनिया में इसी चीज का अभाव है। दुनिया मे जहा लोकशाही के नाम से भी कुछ चलता है वहा भी स्वतन्त्र गण-नायक का अस्तित्व नही है। राज्य चलाने के लिए एक पार्लमेंट बनती है जिसके हाथ में दड-शक्ति रहती है। देश में दो दल बनते हैं, जिनमें उस शक्ति पर कब्जा करने के लिए आपस की प्रतियोगिता होती है। जो जीतता है वह अधिकार में जाता है, जो हारता है वह पार्लमेंट में विरोधी दल बनता है, लेकिन वह भी दड-शक्ति का अग माना जाता है। इसलिए विरोधी दल के नेता को भी सरकारी कोष से वेतन दिया जाता है अर्थात् पार्लमेंट के अधिकारी दल और विरोधी दल दड-शक्ति के ही दो हिस्से हैं, जैसे एक ही वस्तु की दो दिशाएं होती हैं: एक उलटी और दूसरी सुलटी। जिस तरह लड़ाई में एक सैनिक दल और एक रेडक्रास दल होता है। एक का चरित्र मारने का होता है और दूसरे का बचाने तथा सेवा करने का। लेकिन दोनों ही हिंसा शक्ति के दो बाजू हैं, क्योंकि दोनों युद्ध-जनित हैं, उसी तरह ये, पार्लमेंट के दोनो दलो में दो चरित्र होते हुए भी दंड-शक्ति के दो बाजू ही हैं।

यही कारण है कि आज सारी दुनिया में तानाशाही का बोलबाला है, क्योंकि अधिकार को नियंत्रित करने के लिए स्वतन्त्र लोकशक्ति का सगठन तथा नेतृत्व रूप में स्वतन्त्र गणनायक दल यानी शिव का अस्तित्व नहीं है। तभी महात्मा गांधी ने कहा था कि आज की दुनिया में स्वराज्य इंग्लैंड,

अमरीका, रूस या जर्मनी कही नही है, क्योकि उन्हें कही शिव दिखाई नहीं दिया।

इसीलिए दंड-हीन समाज की धारणा के आधार पर अगर दंड-निरपेक्ष समाज कायम करना है तो उस दिशा में पहला कदम यह होना चाहिए कि देश में एक स्वतंत्र तीसरा दल हो जो लोक-सेवा के आधार पर महान तपस्वी होने पर भी दंड पर कब्जा करने की प्रतियोगिता में शामिल न हो और निरन्तर जनशक्ति के संगठन में लगा रहे। यही कारण है कि विनोबाजी अपने अनुयायियो को उस प्रतियोगिता से पृथक रहने के लिए आग्रह करते हैं और सर्व-सेवा-संघ भी अपने को उससे अलग रखता है।

इतना होने पर भी एक दूसरी बात की भी आवश्यकता है। दुनिया में प्रकृति और पुरुष के सयोग से ही कोई बात फलवती होती है। केवल पुरुष या केवल प्रकृति अनुत्पादक होती है। अतः अगर देश में शिव की स्थापना हुई यानी स्वतंत्र नेतृत्व कायम हुआ तो भी अगर जनता की परिस्थिति अनुकूल न रही तो उस शक्ति का निर्माण नही होगा, जिसके द्वारा वह अधिकार को नियंत्रित कर सके। नायक चाहे जितना तपस्वी हो, अनुकूल परिस्थिति के बिना जनता उसके इशारे पर तांडव नही करेगी। अब प्रश्न यह है कि इस परिस्थिति का स्वरूप क्या है? और आज कौनसी परिस्थिति है, जिसके कारण जनता के अन्दर विद्रोही शक्ति का अभाव होगा। इसका मुख्य कारण है आर्थिक केन्द्रवाद।

पूंजी का चक्कर

दुनिया में मनुष्य ने श्रम टालने के फेर में बड़े-बड़े कल-कारखानों की सृष्टि की और जिन्दा रहने के सारे साधनों की उत्पत्ति पूंजी के आश्रित कर दी। नतीजा यह हुआ कि जनता की जान उसके शरीर के अन्दर से निकल कर पूंजी के अन्दर पूंजीभूत हो गई, कुछ मुट्ठी भर लोगों के कब्जों में चली गई। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि पूंजी का स्वधर्म है कि वह एक स्थान पर इकट्ठी होकर रहे। इसलिए उसका संचालन थोड़े लोगों द्वारा ही होना संभव है। जनता की जान पूंजी-आश्रित हो जाने से ऐसे

गुट के कब्जे में चली गई जिसने अधिकार पर कब्जा कर लिया। जान का कब्जा अधिकारी के हाथ मे होने पर जनता के लिए यह संभव नही रहा कि वे उसी अधिकारी के विरोध में विद्रोह करें जिसके बिना वह जिंदा नहीं कर सकती है।

जनता को आन की अपेक्षा जान की फिक्र

यह सही ह कि मनुष्य-समाज स्वतत्रता-प्रेमी है और स्वतत्रता के लिए काफी तकलीफ उठाने को तैयार रहता है। आन के लिए जान को कुर्बान करने की भी मिसालें इतिहास में पाई जाती है। लेकिन साधारण जनता के सामने जब आन और जान के बीच चुनने का सवाल खडा होगा तो वह आन छोड़ कर जान की रक्षा करने की ही फिक्र ज्यादा करेगी। जो लोग जान देकर भी आन की रक्षा करते हैं, उनको हम शहीद कहते है *और उनकी पूजा करते है, पर वे विरले है। अतः मानव-समाज की जान* यदि अधिकारी के हाथ में रहेगी तो जनता अधिकारी के विरोध मे जान को खतरे में डालने के बजाय आन को पीछे रखकर उनसे समझौता करने की ही कोशिश करेगी। अतएव अगर जनता की जान यानी जिन्दा रहने के लिए *मौलिक साधन का उत्पादन पूजी-आश्रित रहा तो जनता के लिए* विद्रोह करने की परिस्थिति अनुकूल नही रहेगी। ऐसी हालत में कितना ही तपस्वी नेतृत्व पाने पर भी मनुष्य अधिकारी पर नियत्रण नही रख सकेगा, यानी वह गणतत्र की रक्षा नहीं कर सकेगा। इसका सहज नतीजा तानाशाही होगा।

श्रम-आश्रित उत्पादन-पद्धति की आवश्यकता

यही कारण है कि शोषण-हीन समाज यानी स्वराज्य स्थापना करने के लिए प्रथम आवश्यकता एक महान् आर्थिक क्रांति की है। अर्थात आज जो पूजी-आश्रित उत्पादन-पद्धति चल रही है उसे समाप्त कर श्रम-आश्रित उत्पादन-पद्धति कायम करने की आवश्यकता है। बहुत से दूसरे लोग भी 'पूंजीवाद का नाश हो' का नारा लगाते है, लेकिन वे पूंजीवाद यानी पूंजी-आश्रित उत्पादन-पद्धति को खत्म करने की चेष्टा न करके पूंजीपति को खत्म करने की कोशिश करते है। वस्तुतः पूंजीपति को खत्म करने से ही समस्या का

समाधान नही होगा। पूजीवाद का मूलोच्छेद करना होगा। गाधीजी कहते थे कि समाज की परेशानी का कारण व्यक्ति नही, पद्धति है। इसलिए पूजी का कौन संचालन करे, इसकी फिक्र न कर पूजी-आश्रित आर्थिक पद्धति रहे या न रहे, इसपर ही विचार करना चाहिए। अगर जिन्दगी की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूजी की अनिवार्य आवश्यकता रह जाती है और पूंजीपति खत्म होता है तो वह पूजी पूजीपति के स्थान पर किसी दलपति के कब्जे में चली जायगी और जनता की जान पूजीपति वर्ग की मुट्ठी से निकल कर दलपति की वज्रमुष्ठि के नीचे चली जायगी। अर्थात् एकवर्गीय तानाशाही के स्थान पर एकदलीय तानाशाही कायम होगी।

भूमि पूंजी के कब्जे से निकले

उत्पादन का मौलिक साधन भूमि ही है। इसलिए अगर पूजीवाद को खत्म करके श्रमवाद की स्थापना करनी है तो उसका पहला कदम भूमि को पूंजी के कब्जे से निकाल कर श्रम के ही कब्जे में डालना होगा अर्थात् भूमि का फल उसी को मिलना चाहिए जो उसपर श्रम करे। इसीलिए विनोबाजी कहते हैं कि भूमि-दान-यज्ञ गरीबों को राहत पहुंचाने का एकमात्र सामान्य साधन ही नहीं है और यह न सिर्फ तात्कालिक बेकारी दूर करने का एक जरिया है, बल्कि यह यज्ञ एक महान क्रांति का पहला कदम है। इसलिए वह केवल भूमि-वितरण की बात नहीं करते हैं, बल्कि भूदान-यज्ञ और केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार आदोलन को अभिन्न मानते हैं और अपनी भाषा में दोनों को 'सीता-राम' कहते हैं।

अतः जो कार्यकर्त्ता भूमिदान-यज्ञ को एक सामान्य परोपकारी कार्य-क्रम न मानकर शासनहीन तथा शोषण-हीन समाज कायम करने के उद्देश्य में एक क्रान्तिकारी कदम मानते हैं, उन्हें भूमिदान-आन्दोलन के साथ-साथ केन्द्रित उद्योग बहिष्कार आन्दोलन का आग्रह कड़ाई के साथ करना पड़ेगा तथा जन-समाज को श्रमवाद के इस क्रान्तिकारी पहलू को गहराई से समझाना पड़ेगा, नहीं तो गणतंत्र कायम करने का यह क्रान्ति-कारी आन्दोलन प्रतिक्रान्तिकारी शक्ति के कब्जे में जाकर संसार में

तानाशाही ही कायम करेगा।

हमारा उद्देश्य शासनहीन समाज-रचना

इस तरह हमारा कार्यक्रम स्पष्ट होता है। हमारा अंतिम उद्देश्य शासनहीन यानी दंडहीन समाज कायम करने का है, जिसका व्यावहारिक रूप दंड-निरपेक्ष समाज है। ऐसा समाज कायम करने के लिए हमारा तात्कालिक आन्दोलन आज के पूर्ण दंड-सापेक्ष-समाज को जनता के नियंत्रण में लाने का है। इस दिशा में जनता की जान दंडशक्ति के बाहर निकालने का सक्रिय कदम उठाना होगा। ऐसा तभी हो सकता है जब जनता की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समाज की आतरिक व्यवस्था और संचालन के लिए मनुष्य की केन्द्रीय पूजी अवलंबित उत्पादन-पद्धति को छोड़ कर *विकेन्द्रित श्रम-अवलंबित उत्पादन-पद्धति को अपना कर स्वावलंबी हो।*

हमारे जो साथी उपर्युक्त उद्देश्य को भली-भांति समझ गए है, वे जल्दी से कानून क्यो नही बनता है, इसके लिए परेशान नही होगे। वस्तुतः आज जो कार्यकर्त्ता तथा करीब-करीब दूसरे सभी लोग यह कहते है कि फौरन कानून बन जाय और जमीन का बंटवारा हो जाय, इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि लोगो ने भूमिदान-यज्ञ के मूलतत्व को नही समझा है। शासनहीन समाज कायम करने की क्रान्ति की शुरुआत में ही शासन का भरोसा अगर करना हुआ तो उसका नतीजा वही होगा जो रूस में हुआ। अर्थात् निरंतर शासन के सहारे ही समाज का संगठन, संचालन तथा सामाजिक समस्याओं का समाधान करना होगा जिसका सहज परिणाम सर्वाधिकारी राज्यवाद ही होगा। फिर शासन-निरपेक्ष काम कौनसा होगा ?

भूमि की समस्या आज की दुनिया की एक महान समस्या है। एशिया के लिए तो यह प्रथम महत्व की समस्या है। अगर शासन की अपेक्षा तोड़नी है, तो हमें सबसे बड़ी समस्या के समाधान में ही शासन-निरपेक्ष होकर काम करना होगा, क्योंकि भूमि समस्या जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न का हल करने में अगर दंडशक्ति को ताक पर रखकर केवल जनशक्ति के आधार पर ही कामयाब हो जाते है, तो शासन की आवश्यकता को खत्म करने की

दिशा में हम एक बहुत बडा किला फतह कर लेते हैं। अगर इतनी महान समस्या का समाधान स्वतंत्र जन-शक्ति से ही हो गया तो उस शक्ति के लिए आज जो छोटे-छोटे सरकारी महकमे चल रहे हैं उन्हें अनावश्यक कर देने में कितनी देरी लगेगी।

शंकाशील व्यक्ति पूछेंगे कि क्या बिना कानून के आप इस समस्या का हल कर लेंगे? जनशक्ति पर विश्वास करनेवाले व्यक्ति को शंका ही नहीं होगी। लेकिन थोड़ी देर के लिए अगर मान भी लें कि तत्काल पूर्ण सफलता कानून के बिना नहीं होगी, तो भी जिस हद तक वह कामयाब होगी उस हद तक दंड-शक्ति की आवश्यकता खत्म होगी। यानी क्रान्ति की दिशा में प्रगति होगी। कोई भी क्रान्तिकारी पहले से ही यह मान नहीं सकता कि हमारी क्रान्ति असफल होगी। अतएव जो लोग शासन-हीन समाज की क्रान्ति की बात सोचते हैं उन्हें शुरू से ही शासन की आवश्यकता को समाप्त करने की बात सोचनी होगी। और यह होगा तब जब वे निरतर शासन के बिना ही सामाजिक समस्याओं का समाधान करने की चेष्टा करते रहेंगे। क्रान्ति की बात तो दूर रही, सामान्य युद्ध में भी जिस मुल्क को दखल करना होता है उसकी दखल की चेष्टा प्रथम से ही होती है। और अगर पूरा दखल नही भी हुआ तो जितना दखल हुआ उतनी कामयाबी वे मानते हैं। क्रान्ति की भूमिका में यह बात तो और जरूरी है।

भूमि और कानून

बहुत-से मित्र कहते हैं कि विनोबाजी भी तो कानून की बात करते हैं। वे उसी तरह से विनोबाजी के शब्द को उद्धृत करते है जिस तरह बहुत से लोग गांधीजी के शब्द उद्धृत करके कहते हैं कि वे भी तो हिंसा को मानते थे। गांधीजी ने कहा था कि अगर मुझे कायरता और हिंसा के बीच किसी को चुनना होगा, तो मैं कायरता से हिंसा को अधिक पसंद करूंगा। उसी तरह विनोबाजी ने कहा है कि अगर बिना कानून बनाये सब से ही भूमि की समस्या हल हो गई तो मैं नाचूंगा। मगर आखिर कानून का सहारा लेना ही पड़ा तो उसे मैं बर्दाश्त कर लूंगा। इसका मतलब हुआ कि जिस तरह

गाधीजी अहिंसा को ही मानते थे लेकिन अगर उन्हें कायरता और हिंसा के बीच चुनना पडता तो हिंसा को चुनते, उसी तरह विनोबाजी दड-शक्ति के बिना ही भूमि समस्या हल करने के सिद्धान्त को मानते है, लेकिन अगर उनको वर्तमान विषमता कायम रखना और दंड-शक्ति के सहारे भूमि का विभाजन करने के बीच चुनना पडा तो वे वर्तमान परिस्थिति कायम रखने के मुकाबले मे कानून के सहारे से भी परिस्थिति वदलना पसद करेंगे, अर्थात् विनोबाजी उसी अर्थ मे कानून के सहारे अपना काम करने की बात मानते हैं, जिस अर्थ में गाधीजी हिंसा को मानते थे।

फिर अगर भूमिदान-यज्ञ से भूमि का बटवारा हो गया तो क्या मुल्क मे भूमि-संबंधी कोई कानून रहेगा ही नही ऐसी बात नही है। जबतक पूर्ण राज्यहीन नही होता, तबतक उसमें कानून रहेगा। लेकिन वह कानून भूमि-समस्या का समाधान होने पर रजिस्ट्री करने के तरीके से विधिवत् करना मात्र होगा, न कि कानून से भूमि बाटना होगा। आखिर अमरीका, आयरलेंड या हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता का कानून पार्लामेंट में ही बना था। तो क्या कोई कहेगा कि पार्लामेंट के कानून से ही इन मुल्को को आजादी मिली? शायद ही कोई ऐसा सोचता होगा। हर एक समझदार व्यक्ति यह समझता है कि जनता द्वारा स्वतत्रता-युद्ध के सफल नतीजे से ही इन मुल्को को आजादी मिली। जैसे स्त्री-पुरुष ने अगर आपस में शादी तय करके रजिस्ट्रार के पास उसकी रजिस्ट्री करा ली, तो कोई यह नही कहेगा कि रजिस्ट्रार साहब ने कानूनन यह शादी करा दी। उसी तरह भूमिदान-यज्ञ के सफल होने पर भी उस पर विधान सभा की मुहर पड़ेगी। वह मुहर ठीक उसी तरह पड़ेगी जिस तरह उपर्युक्त मुल्कों की आजादी को वैधानिक बनाने के लिए पार्लामेंट की मुहर लगी या शादी की रजिस्ट्री हुई।

: ५ :

वर्ग-परिवर्तन की ओर

आजादी छीनने से आत्मा का निर्दलन होता है और शरीर का शोषण होता है श्रम-उपार्जित सामग्री के अपहरण से। शरीर के शोषण की दिशा में आज समाज इतना आगे बढ़ गया है कि श्रमिक परेशान है। वस्तुतः जिस तरह राजनैतिक क्षेत्र में सर्वाधिकारी राज्यवाद (Totalitarianism) की समस्या आज का मुख्य सवाल है, उसी तरह सामाजिक क्षेत्र में वर्ग-विषमता के संकट ने आज सबसे ऊपर का स्थान ले लिया है। समाज आज दो निश्चित तथा विरोधी वर्ग मे विभाजित हो गया है। एक वर्ग उत्पादन करता रहता है और दूसरा व्यवस्था के बहाने उत्पादित सामग्री का उपभोग करता रहता है। साधारण भाषा में कहें तो कहना होगा कि एक मेहनत करके खाता है और दूसरा दलाली करके, और हम अक्सर एक को 'मजदूर' और दूसरे को हुजूर कहते हैं।

लेकिन वर्ग-विषमता की यह सामाजिक समस्या कोई स्वतंत्र समस्या नहीं है। यह राजनैतिक तथा आर्थिक केन्द्रीयकरण का नतीजा-मात्र है। इस बात को विशेष रूप से समझना चाहिए। आखिर हुजूर लोग मजूरो का शोषण किस तरह करते हैं ? इस पर से बचपन में पढ़ी हुई बिल्ली और बंदर की एक छोटी-सी कहानी याद आती है। दो बिल्लियां मेहनत करके रोटियां लाई थी और बंदर उस रोटी का माकूल बटवारा करने के बहाने उसे खा गया। उसी तरह मजदूर रोटी उत्पादन करता है और हुजूर लोग उसका इन्तजाम करने के बहाने खा जाते हैं। मजदूर केवल पेट पर हाथ रखकर तांकते रहते हैं।

यही कारण है कि आज संसार में चारों ओर से वर्गहीन समाज कायम करने की मांग सुनाई पड़ती है; लेकिन यह वर्गहीन समाज कायम कैसे हो ? अगर दुनिया में एक ही वर्ग रखना है तो वह मजदूरों का यानी श्रमिकों का ही एक वर्ग हो सकता है, क्योंकि हुजूर वर्ग यानी व्यवस्थापक वर्ग अकेला

अपने पैर पर खड़ा नही रह सकता । अतः वर्गहीन समाज कायम करने के लिए आवश्यक है कि इस हुजूर वर्ग का लोप हो । इस वर्ग को विघटित करने का तरीका तभी मालूम हो सकेगा जब हम इसके संगठित होने के इतिहास को समझ ले ।

हुजूर-वर्ग के संगठन का इतिहास

मानव-समाज के प्रथम युग में सभी लोग मजदूर थे—सब उत्पादन करके खाते थे और सब सहयोगिता के आधार पर झुड में रहते थे । इसी कारण हमारी किताबो में लिखा है कि सत्य-युग में एक ही वर्ण था । बाद को जब समाज मे प्रतियोगिता का आविर्भाव हुआ तथा आपसी संघर्ष के नतीजे से हिंसा होने लगी, तो मनुष्य ने राजा की सृष्टि की, यानी राज्य के रूप में एक ऐसी सस्था की सृष्टि की जिसमे कुछ लोग विना उत्पादन किये व्यवस्था करके अपना गुजारा कर सकते थे । इस तरह राज्य-पद्धति के आविष्कार से हुजूर-वर्ग की सृष्टि हुई । जैसे-जैसे राज्य-प्रथा केन्द्रित और विस्तृत होती गई वैसे-वैसे उसी के सहारे हुजूर-वर्ग का विस्तार हुआ । उसी तरह मनुष्य ने श्रम टालने के लिए पूजी के आधार पर जिस उत्पादन-पद्धति का आविष्कार किया उसी पद्धति के अनुसार उद्योग-धधो के संचालन तथा उत्पादित सामग्री के वितरण के बहाने एक दूसरी जाँति के हुजूरो की विराट फौज खडी हो गई । दोनो मिलकर मजदूर पर इतना अधिक बोझ हो गया कि आज मजदूर उसके नीचे दबकर मरना चाहता है ।

हुजूर बनाने के कारखाने

सिर्फ इतना ही नही, मौजूदा शिक्षा-पद्धति की खराबी के कारण शिक्षित समाज के लोगों में किसी प्रकार के उत्पादन का काम न कर सकने के कारण उनमें से जो लोग व्यवस्था तथा वितरण-कार्य नही करते है, वे भी किसी-न-किसी तरीके से मजदूरो के कन्धो पर बैठे रहते है । वस्तुत. आज के स्कूल और कालेज हुजूर बनाने के कारखाने-मात्र बने हुए है । अतएव जैसे-जैसे इस कारखाने से लोग निकलते जाते है वैसे-वैसे मजदूरों के कन्धो पर बोझ बढ़ाते जाते है । चोटी के नेता से लेकर बाजार की सड़क पर गोष्ठी करनेवालों तक

लोग कहते है, कि यह शिक्षा-पद्धति बदलनी चाहिए, लेकिन ऐसा हो कैसे ? अगर किसी देश में चीनी की ही माग हो तो चीनी का कारखाना तोड़कर आटे का कारखाना नही कायम किया जायगा। राजनैतिक तथा आर्थिक उत्कट केन्द्रीयकरण के कारण शुद्ध व्यवस्थापक और वितरक की ही माग आज समाज मे भरपूर है। जबतक यह माग इसी तरह कायम रहेगी तबतक हुजूर बनाने की कारखाने-रूपी शिक्षा संस्था की तब्दीली नही हो सकती है। इसलिए सबसे पहले आर्थिक तथा राजनैतिक क्रान्ति और परिणामस्वरूप सामाजिक क्रान्ति करनी होगी, तभी बाकी बातें हो सकती है।

राजनैतिक तथा आर्थिक केन्द्रीयकरण के नतीजे से आज मजदूरों के कन्धों पर हुजूरों के बोझ की वृद्धि के कारण केवल मजदूर ही दबकर मर रहा है, ऐसी बात नही है; बल्कि संख्याधिक्य होने के कारण हुजूर लोगों को भी मजदूरों के शरीर से इतना रस नही मिल रहा है, जिससे वे मोटे-ताजे रह सकें, इसलिए वे भी सूखकर मर रहे हैं। इस प्रकार आज दोनों के सामने सकट खड़ा है यानी सारा संसार ही वर्ग-विषमता की आग से भस्म होना चाहता है। ऐसी हालत में आवश्यकता इस बात की है कि तत्काल और तुरंत एक महान् क्रान्ति के द्वारा पूर्ण रूप से एक वर्गीय समाज कायम हो, अर्थात् हुजूर-वर्ग के विघटन से मजदूरों का ही एक अद्वैतवादी समाज कायम हो।

क्रान्ति की दो प्रक्रियाएं

प्रश्न रह जाता है कि इस क्रान्ति की प्रक्रिया क्या हो ? दो ही तरीके हो सकते हैं, एक वर्ग-संघर्ष का हिंसात्मक तरीका, दूसरा वर्ग-परिवर्त्तन की अहिंसात्मक क्रान्ति। एक विनाशकारी तरीका, दूसरा क्रान्तिकारी तरीका। पहले तरीके से मजदूर द्वारा हुजूरो के उन्मूलन की चेष्टा होगी और दूसरे तरीके से हुजूर मजदूर बनकर मजदूरों में विलीन होंगे। पहले तरीके की दूसरे मुल्को मे काफी आजमाइश हो चुकी है और हमने देखा कि उसका कोई नतीजा नही निकलता है, बल्कि एक समस्या से निकलकर दूसरी उससे जटिल समस्या के नीचे समाज पड़ जाता है। रूस में उन्मूलन की चेष्टा हमने देखी। वहा हुजूर-वर्ग खत्म नहीं हुआ। उनकी केवल चोटी

ही कट गई। सारा शरीर ज्यों-का-त्यो रह गया। पूजीपतियों का नाश हुआ सही, लेकिन वहा इतना जबरदस्त एक व्यवस्थापक राज्य कायम हुआ कि इस व्यवस्था के नाम पर ही हुजूर-वर्ग का इतना अधिक सगठन हुआ कि मजदूर पूर्णरूप से उसके नीचे दब गया। पूजीपति-रूपी चोटी रहने पर जनता कभी-कभी उसे पकड भी सकती थी, लेकिन अब तो उससे भी हाथ धो बैठी और एक भयंकर संगठित दल की मुट्ठी के नीचे चली गई।

उन्मूलन की प्रक्रिया हिंसा की प्रक्रिया है। इसलिए इस तरीके से केवल ऊपर लिखे मुताबिक तात्कालिक और व्यावहारिक संकट ही आयगा, ऐसी बात नही। मानव-समाज में एक स्थायी संकट कायम हो जायगा। आखिर हम वर्ग-विषमता क्यों दूर करना चाहते है ? इसलिए कि हम हिंसा से मुक्त होकर दुनिया में शाति कायम कर सकें। हिंसा को माननेवाले कहते है कि वे भी दुनिया में हिंसा खत्म करके शान्ति कायम करना चाहते हैं परन्तु वे कहते है, काटा निकालने के लिए काटा ही चाहिए, मालिश से वह नही निकलेगा। यानी हिंसा से ही हिंसा का अन्त होगा, प्रेम से नही। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या हिंसा से हिंसा का अत होगा ? जो लोग इस प्रकार सोचते है, वे विज्ञान को भूल जाते है। विज्ञान का कहना है कि हरेक क्रिया की समान प्रतिक्रिया होती है और इस क्रिया-प्रतिक्रिया का घात-प्रतिघात अनन्त काल तक चलता है। अत: अगर हिंसा की क्रिया होगी तो उसकी प्रतिक्रिया प्रतिहिंसा ही होगी और हिंसा-प्रतिहिंसा का घात-प्रतिघात अनन्तकाल तक चलता रहेगा। फिर किस काल में जाकर हिंसा समाप्त होकर शान्ति की स्थापना होगी।

इसलिए गाधीजी हमसे वर्ग-परिवर्तन की अहिंसक क्रान्ति करने का आवाहन करते रहे हैं।

वे हुजूर-वर्ग को सामाजिक उत्पादन में शामिल होकर उत्पादन-वर्ग में विलीन होने के लिए कहते थे और इसका सक्रिय कार्यक्रम देश के सामने रखते थे। सन् १९४५ में जेल से निकलते ही उन्होंने कहा कि अंग्रेज तो जा

रहे हैं और शायद हम जैसा समझते हैं, उससे जल्दी ही जायंगे। अब हमें शोषण-हीन समाज कायम करने के लिए सक्रिय कदम उठाना है। इसके अमल के लिए उन्होंने कहा कि जो लोग खादी पहनना चाहते हैं, उन्हें दो पैसे प्रति रुपये का सूत कातना ही होगा। उसी तरह उन्होंने कहा कि जो लोग खाना खाना चाहते हैं, उन्हें अपने हाथ से अन्न-उत्पादन करना ही है। इन बातों पर वे यहां तक जोर देते थे कि कलकत्ते के लोगो के यह कहने पर कि उनके पास जमीन कहां, जहां वे अन्न उत्पादन कर सकते है, उन्होंने कहा कि गमले मे ही सही, लेकिन नियमित रूप से अन्न-उत्पादन की प्रक्रिया हरएक को अपने हाथ से करनी ही है। यह स्पष्ट है कि गांधीजी जैसे व्यावहारिक क्रान्तिकारी व्यक्ति यह नही समझते थे कि दो पैसे के सूत कातने-मात्र से या गमले में अन्न-उत्पादन करने से देश के अन्न-वस्त्र की समस्या हल हो जायगी या उतने ही से हुजूर-वर्ग के लोग मजदूर बन जायंगे, लेकिन क्रान्ति तो पहले विचार-क्षेत्र में ही होती है। गाधीजी सामान्य लाक्षणिक उत्पादन से पहले लोगों के दिमाग में क्रान्ति लाना चाहते थे ताकि वे निरन्तर अपने हाथ से उत्पादन करने के महत्त्व को समझें और थोडा-सा उत्पादन करके उत्पादक-वर्ग में सम्मिलित होने की क्रान्ति मे शामिल है, यह बात जाहिर करें यानी गांधीजी के इस आन्दोलन के रजिस्टर मे नाम लिखा लें।

इसी प्रकार वर्ग-परिवर्तन की क्रान्ति की दिशा मे दूसरे हल्के-हल्के सक्रिय कार्यक्रम रखते थे। वे बाबू वर्ग के लोगो को अपने व्यक्तिगत काम के लिए घरेलू नौकर से काम न लेने की बात कहते थे। अपने आदर्श के अनुसार संचालित आश्रमों मे पाखाना-सफाई से लेकर खाना बनाने तक सभी काम अपने हाथ से करने की विधि रखकर श्रम-प्रतिष्ठा पर जोर देते थे। अन्त मे उन्होंने वर्ग-परिवर्तन का एक महान् क्रान्तिकारी तथा व्यावहारिक कार्यक्रम दुनिया के सामने रक्खा, वह था शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन। उन्होंने कहा कि शिक्षा के लिए वर्तमान हुजूर बनाने के कारखानों को बद कर दिया जाय और सारी शिक्षा-योजना शरीर-श्रम द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया के माध्यम से ही बनाई जाय। ऐसा करने से मजदूर वर्ग के लोगों

को शिक्षित करने में उन्हें मजदूरी के कार्य से उखाड़ने की आवश्यकता नही होती है और मजदूर रहते हुए वे शिक्षित हो जाते हैं। बाबू लोगो के लड़के भी बचपन से ही उत्पादन-कार्य में अभ्यासी होने के कारण समर्थ उत्पादक बन जाते हैं। इस तरह नई तालीम के द्वारा देश में शिक्षित तथा वैज्ञानिक मजदूरो का एक-वर्गीय समाज कायम हो जाता है।

समग्र ग्राम-सेवा का कार्य

गांधीजी उपर्युक्त मनोविज्ञान तथा शैक्षणिक कार्यक्रम मात्र से ही संतुष्ट नही थे। यह सही है कि अहिंसा में इन प्रक्रियाओ का सबसे अधिक महत्त्व है, लेकिन साथ ही अगर समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किया न जाय तो प्रतिकूल परिस्थिति में मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षणिक कार्यक्रम भी विफल हो सकता है। इसलिए वे देश को एक महान सामाजिक क्रान्ति के लिए तैयार करना चाहते थे। इस दिशा में उन्होने मुल्क के सामने समग्र ग्राम-सेवा द्वारा जन-स्वावलबन का कार्यक्रम रक्खा। जहा वे हुजूरों के विवेक पर असर कर उन्हे मजूर बनने की प्रेरणा देते थे, वहीं वे देहाती उत्पादक वर्ग के लोगों में इस बात की चेतना पैदा करना चाहते थे कि वे हुजूरो की उन सेवाओं को इन्कार करने की शक्ति संगठित करें, जिनके बहाने हुजूर लोग उनका शोषण करते रहे है, अर्थात् बन्दर और बिल्ली की कहानी की भूमिका में अगर कहा जाय तो जहा वे बन्दरो को अपने-आप रोटी पैदा करके गुजर कर शोषण छोड़ देने की बात कहते थे, वहा बिल्लियों को अपने आप रोटी बांट कर खाने का सदेश सुनाते थे, ताकि उन्हें किसी दूसरे के पास रोटी बंटवाने की सेवा लेने के लिए न जाना पड़े।

उन्होंने इस आन्दोलन के लिए सबसे पहले नेतृत्व की तब्दीली की बात की। आज जितने भी आन्दोलन चल रहे है उनके नेतृत्व बाबू वर्ग के लोगों के ही हाथ में हैं, हालाकि जिस प्रकार मैंने पहले भी कहा है, वे हितैषी बाबू लोग हैं। लेकिन वर्ग-हीन समाज कायम करने का नेतृत्व अगर ऐसे लोगों के हाथ में रहे, जिनमें उत्पादन करके अपना गुजारा करने की शक्ति नहीं है तो आन्दोलन के सफल होने पर यह नेतृत्व बिना पैदा करके खाने का

कोई-न-कोई जरिया ढूढ लेगा, यानी वे स्वावलंबी समाज की बात न सोच कर संचालित समाज की ही बात करेंगे, क्योकि ऐसे समाज मे संचालक का काम करने के लिए उनकी आवश्यकता होगी अर्थात् नेतृत्व अगर जिनके हाथ में आज है उन्ही पर रह गया तो आन्दोलन को धोखा होने की पूर्ण संभावना रहती है। इसलिए गांधीजी ने पहला नारा यह लगाया कि हमें इस समाज-क्रान्ति के लिए सात लाख नौजवान चाहिएं, जो सात लाख गांवों में जाकर वर्ग-परिवर्तन कर उत्पादक श्रम द्वारा अपना गुजारा करें और समग्र ग्राम-सेवा से प्रत्येक देहात को स्वयं पूर्ण बनावें।

गांधीजी ने यह स्पष्ट रूप से देख लिया था कि आज मजदूर वर्ग बे-होश है। अतः उनका नेतृत्व किसी बाहोश व्यक्ति को ही करना होगा। ऐसा होश हुजूर-वर्ग के लोगों में ही है, अतः उन्हीको मजदूर बनकर नेतृत्व तब्दीली का उद्देश्य सिद्ध करना होगा। मजदूर से तो कहना होगा कि तुम अपना काम अपने-आप चलाओ और दूसरे द्वारा अपने को शोषित न होने दो, पर ऐसी बात कहे कौन? क्या हम कहनेवाले उनसे यह बात कहें कि हम तुम्हें रास्ता बताने की सेवा देते है, अतः हमारी सेवा तो ले लो और उसके एवज मे हमको बिना पैदा करके खाने दो लेकिन दूसरे की ऐसी सेवा लेने से इन्कार करो जिससे वे बिना पैदा करके तुम्हारे श्रम से उत्पादित सामग्री का उपभोग न कर सकें, क्या ऐसा कहना सुसंगत होगा? इस प्रकार विश्लेषण कर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग-हीन समाज की क्रान्ति के नेतृत्व के लिए सबसे पहले देश के हुजूर-वर्ग के नौजवानों को मजदूर बनकर मजदूरों में विलीन होना होगा और शोषण की प्रक्रिया से असहयोग करने का आन्दोलन चलाना होगा, वरना वर्गहीन समाज की बात कोरे आदर्श के रूप में रह जायगी।

इस तरह गांधीजी ने सात लाख नौजवानो को मजदूर बन कर मजदूरों का प्रत्यक्ष नेतृत्व स्थापित करने के बाद देहाती जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आंतरिक व्यवस्था के लिए स्वावलबी बनाने का संगठन करने को कहा, जिससे वे समाज में अति विकसित व्यवस्थापकों तथा वितरकों

के हाथ से मुक्ति पा सकें। इस दिशा में उन्होंने चरखा संघ आदि संस्थाओं के कार्यक्रमों मे आमूल परिवर्तन किया जिससे सभी कार्यक्रम पूर्ण ग्राम-स्वावलबन की दिशा मे चल सकें।

सक्षेप में गाधीजी ने परिवर्तन की दिशा में दुनिया को दुधारा मंत्र दिया। शोषक वर्ग को शोषण छोड़कर उत्पादक बनने के लिए उनकी विवेक बुद्धि को जाग्रत किया और शोषित वर्ग को शोषण से असहयोग करने का सगठन करने को कहा, जिससे शोषक वर्ग को अब शोषण करने की गुंजाइश नहीं रह जायगी, ताकि परिस्थिति की मजबूरी के कारण वे अपने को मजदूर बनाकर वर्ग-परिवर्तन की क्रान्ति की ओर अग्रसर हो सकें।

व्यक्ति नहीं, पद्धति बदलनी है

उपर्युक्त आन्दोलन के सदेश से उन्होंने दुनिया को एक नया मंत्र दिया। उन्होंने क्रान्ति का एक नया क्रान्तिकारी तरीका बताया। जैसाकि हमने पहले ही कहा है, व्यक्ति कुछ नहीं है, पद्धति ही असली चीज है। उसीके कारण मनुष्य सुखी या दुःखी होता है। अतः अगर दुःख से मुक्त होना चाहते हो तो पद्धति वदलो, न कि व्यक्ति। वस्तुतः केन्द्रीय राज्यवाद तथा पूंजीवाद के कारण व्यवस्था-वितरण का जो कार्य है उसीने हुजूरों की आवश्यकता की सृष्टि की और जबतक समाज में उस कार्य की आवश्यकता रहेगी तबतक यह वर्ग किसी-न-किसी नाम से कायम रहेगा। इसलिए गांधीजी विकेन्द्रित तथा स्वावलबी उत्पादन और व्यवस्था द्वारा उस कार्य को ही समाप्त करना चाहते थे, जिसके कारण आज की वर्ग-विषमता का संकट संसार भर में फैल गया है।

श्रम-विभाजन की बात

देश के पढ़े-लिखे लोगों को जब यह बात बताई जाती है तो वे कहते हैं कि आप एकतरफा बात कहते हैं। यह क्या जरूरी है कि सभी लोग शारीरिक और मानसिक दोनों श्रम करें? वे श्रम-विभाजन की बात करते हैं। वे कहते हैं कि आखिर सब व्यक्तियों की प्रकृति, प्रवृत्ति तथा संस्कृति एक-सी नही होती। वे कहते हैं कि प्रकृति की विचित्रता के कारण विभिन्न

व्यक्तियों में विभिन्न शक्तियां होती हैं और समाज की उन्नति के लिए उन शक्तियों का पूर्ण उपयोग होना चाहिए। ऐसा कहकर श्रम-विभाजन के बहाने वे कुछ लोगों को मानसिक श्रमवाले और कुछ लोगो को शारीरिक श्रमवाले बनाने की बात करते हैं और कहते हैं कि दोनो ही श्रमिक होने के कारण एक ही वर्ग में शामिल हो सकते हैं। विनोबाजी के शब्दों में वे श्रमिक वर्ग में भी राहु और केतु के रूप मे वर्ग करते हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मानसिक श्रमिक और शारीरिक श्रमिक के रूप मे दो वर्ग चलाने पर वर्गहीन समाज का उद्देश्य सिद्ध होगा ? फिर तो मानसिक श्रमवाले शारीरिक श्रमवालो पर हुकूमत कर उनका शोषण ही करने लगेंगे।

आश्चर्य की बात यह है कि जो लोग मानसिक श्रमिक और शारीरिक श्रमिक के रूप मे दो वर्ग रखना चाहते हैं वे प्राचीन वर्ग-व्यवस्था के खिलाफ हैं। वे अपने को प्रगतिशील कहकर वर्गप्रथा को प्रतिक्रियावादी व्यवस्था कहते हैं। वस्तुत. अगर बौद्धिक श्रमिक तथा शारीरिक श्रमिक यानी ब्राह्मण और शूद्र रूपी दो वर्ग रखना है तो समाज की उन्नति के लिए वर्ण-व्यवस्था ही ज्यादा व्यावहारिक है, क्योकि अगर दो अलग ही वर्ग रखना है तो पैतृक गुण का लाभ समाज को क्यो न मिले ?

वे प्रकृति के नियम और विज्ञान की बात करते हैं। क्या उनके वैज्ञानिक प्राणितत्त्व मे ऐसी बात भी है कि कुछ लोगों का केवल मस्तिष्क बना है और कुछ का शरीर। कुदरत ने मनुष्य को शरीर और मस्तिष्क दोनो दिया है। उसने मानव को बौद्धिक तथा शारीरिक शक्ति दोनो से विभूषित किया है इसलिए कि प्रत्येक मनुष्य दोनों को चलाकर प्रकृति मे से ही अपने को जिन्दा रखने का साधन निकाल ले और सृष्टि की रक्षा करता रहे। अगर मनुष्य इस नियम का उल्लंघन कर अपने को मानसिक श्रमिक और शारीरिक श्रमिक में विभाजित कर ले तो वह प्रकृति का विद्रोह करता है और प्रकृति इस द्रोह का प्रतिशोध लेकर ही रहेगी। आज हम दुनिया में जो वर्ग-विषमता का ज्वालामुखी देख रहे है, वह कोई खास बात नही है, वह

प्रकृति द्वारा प्रतिशोध का प्रदर्शन-मात्र है । अतएव अगर हम समाज को स्थिर तथा शांत देखना चाहते हैं तो हमें वर्ग-परिवर्तन की क्रान्ति बुलंद कर मानव-समाज से इस द्रोह का अन्त करना ही होगा ।

भूदान-यज्ञ और वर्ग-परिवर्तन

संत विनोबा द्वारा प्रवर्तित भूदान-यज्ञ वर्ग-परिवर्तन-क्रान्ति का एक महान तथा व्यावहारिक कदम है । वस्तुतः आज भूमिहीन मजदूर अत्यन्त शोषित वर्ग है और इसका शोषण इसलिए होता है कि उत्पादन का मूलसाधन भूमि पूंजी के कब्जे में है । भूमिपति, जिन्होंने पूंजी लगाकर जमीन प्राप्त की है, श्रमिकों के श्रम से लाभ उठाकर उच्च वर्ग यानी हुजूरवर्गीय बने हुए हैं । विनोबाजी, भूमि किसी की संपत्ति नहीं है, यह सिद्धान्त बताकर कहना चाहते हैं कि भूमि की उत्पादित सामग्री उन्हींके उपभोग में आनी चाहिए, जो उसपर श्रम करे । इस सिद्धान्त के अनुसार वे भूमिपतियों को भूमि पर श्रम कर अपने को मजदूर वर्ग में परिवर्तित करके मजदूरों में विलीन होने को कहते हैं । भूमिदान कहता है कि जिनके पास अधिक भूमि है वे जितने पर खुद अपने शरीर-श्रम से पैदा कर सकते हैं उतनी अपने पास रख कर बाकी भूमि उनको दे दें, जो उसपर परिश्रम तो करते हैं, लेकिन जिनके पास भूमि नहीं है ।

विनोबा की चेतावनी

विनोबाजी का भूमिपतियों से ऐसा करने को कहना कोई त्याग और मेहरबानी का आवाहन नहीं है । यह मानव-समाज की, देश की और उनकी निजी स्वार्थ-रक्षा के लिए एक सामयिक चेतावनी है । जैसाकि मैंने पहले ही कहा है, आज की दुनिया में वर्ग-विषमता का संकट इस पराकाष्ठा पर पहुंच चुका है कि हुजूरों के बोझ से मजदूर दबकर मर रहे हैं और अत्यधिक तादाद हो जाने के कारण पोषण के अभाव से हुजूर सूखकर मर रहे हैं । यही हालत थोड़े दिन जारी रही तो दोनों के मरने पर सृष्टिनाश यानी सर्वनाश हो जायगा । लेकिन प्रकृति यानी सृष्टि की मूल प्रवृत्ति आत्मरक्षा है, इसलिए वह अपने को मरने नहीं देगी और जिन्दा रहने के लिए कोई-न-कोई

उपाय निकालेगी । यही कारण है कि आज का जमाना पुकार-पुकार कर वर्गहीन समाज की माग कर रहा है । मैंने कहा है कि वर्गहीन समाज दो ही तरीके से कायम हो सकता है । मजदूर द्वारा हुजूरो का कत्ल या हुजूरों का मजदूर बनकर मजदूरों में विलीन होना । आज विनोबा महात्मा गाधी के विलीनीकरण के मंत्र से हुजूरवर्ग को दीक्षित करना चाहते हैं । अगर हुजूर घृणा, शान या क्रोध के कारण इस दीक्षा को इन्कार करते हैं तो वे देश और दुनिया और उनके साथ-साथ अपने को ज्वालामुखी के मुख पर ढकेलते हैं ।

वस्तुतः आज भारत के नौजवानों पर एक बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है । आज के युग ने एक महान चुनौती दी है । इस चुनौती की बात विनोबाजी देश भर में घूम कर लोगो के कानो तक पहुचा रहे हैं । वह बात है कि क्या नौजवान वर्ग-विषमता के ज्वालामुखी को सामान्य प्रकृति के हाथ मे छोड़कर, उसे प्रज्वलित होने देकर सृष्टिनाश यानी सर्वनाश होने देंगे या प्रकृति पर पुरुष के नियंत्रण से सर्वनाश को टाल कर सर्वोदय की स्थापना करेंगे ? यह तो स्पष्ट ही है कि वर्ग-विषमता का जो महान सकट आज दुनिया मे खडा है वह ज्यो-का-त्यों स्थिर नही रह सकता । वर्ग-सघर्ष या वर्ग-परिवर्तन किसी-न-किसी रूप में कोई-न-कोई आन्दोलन खडा होकर ही रहेगा । अगर जवान अपने पुरुषार्थ से इस चुनौती के जवाब मे वर्ग-परिवर्तन की महान क्रान्ति कर इस विषमता की आग को सहज मे ही बुझा नही सकेंगे तो पुरुष के पुरुषार्थ के अभाव में वर्ग-संघर्ष की जो आग पहले से ही सुलग चुकी है, प्रकृति देवी उसीको अपना सहारा बनाकर वर्ग-विषमता दूर करने की कोशिश करेगी । उससे विषमता की आग बुझने के बजाय और प्रज्वलित होकर संसार को सर्वनाश की ओर ले जायगी ।

मुझे आशा ही नही, बल्कि विश्वास है कि भारत के नौजवान अपनी काहिली और कायरता के कारण इस चुनौती को यो ही न जाने देंगे, बल्कि संत विनोबा द्वारा प्रवर्त्तित अहिंसक क्रान्ति में हजारो की तादाद मे अपनी आहुति देकर अपनी पीढी की शान और आन की रक्षा करेंगे ।

: ६ :

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—आपने वर्गविहीन समाज कायम करने के लिए जो दो तरीके बताये है, उसमें हिंसा के प्रति *अन्याय किया है। आपने कहा है—"एक* हिंसात्मक तरीका और दूसरा अहिंसात्मक क्रांति।" माना कि आप हिंसा को अवाछनीय मानते है, लेकिन वह क्रान्ति नही है, ऐसा कहना ज्यादती नहीं है क्या ?

उत्तर—आपके प्रश्न से ऐसा मालूम होता है कि आपने क्रांति किसे कहते है इसपर गंभीर विचार नहीं किया। क्राति का मतलब विध्वंस नही, बल्कि परिवर्तन है। एक व्यक्ति क्राति करना चाहता है, इसका मतलब यह है कि वह लोगों की धारणा तथा मूल्यांकन में परिवर्तन लाना चाहता है और जब वह समझता है कि लोगो में परिवर्तन हो नही सकता तब वह कत्ल करता है; अर्थात् हिंसा अविश्वास का इजहार है। ऐसी अविश्वासी प्रवृत्ति से क्राति सध सकती है क्या ?

आप इतिहास के पन्नों मे देखेगे कि हिंसात्मक क्रांति के नाम से ससार में जहा कही कुछ हुआ है, वहा और चाहे जो कुछ हुआ हो, क्राति की सिद्धि नही हुई है, अर्थात् परिवर्तित समाज स्थापित नही हुआ है। कुछ लोगों ने हिंसा द्वारा दमन करके समाज को एक ढाचे में डालने की कोशिश की और इस परिवर्तन को अनतकाल तक दबाकर कायम रखने की चेष्टा की। तो आप कैसे कह सकते है कि समाज में परिवर्तन हुआ ? अगर हिंसा द्वारा समाज में कोई परिवर्तन हुआ दीखता है और उसे हिंसा द्वारा दबाकर ही कायम रखना पड़ता है तो परिवर्तन हुआ, ऐसा नही कह सकते। क्राति की सिद्धि की पहचान परिवर्तित समाज के सहज छोड़ने पर ही हो सकती है। अगर परिवर्तित स्थिति अपने-आप स्थिर नहीं रह सकती, तो वह क्रांति नहीं, क्राति की भ्राति मात्र है।

आजकल चिकित्सा-शास्त्र में डायबेटीज रोग का एक इलाज निकला

है । रोगी को आजीवन प्रतिदिन इंजेक्शन लेना पडता है । एक दिन भी इंजेक्शन न ले तो उसके शरीर की शक्कर उभड़ आती है, और इसे डाक्टर लोग इलाज कहते है । क्या आप कह सकते है कि वह रोगी रोगमुक्त हो गया ? इसी तरह अगर लगातार गोली के निशाने पर समाज का मुह एक दिशा में रखने की जरूरत पडे तो क्या आप कह सकते है कि उसका मुंह उधर ही हो गया ?

इसलिए मेरा कहना है कि अगर वास्तविक क्रांति करनी है तो वह अहिंसा से ही सिद्ध हो सकती है, क्योकि अहिंसा स्थायी रूप से मनुष्य की धारणा तथा समाज के मूल्यांकन में परिवर्तन करती है ।

प्रश्न—लेकिन आज हिंसा इतनी बढ़ रही है कि उसने गाधीजी को भी कत्ल कर दिया । सारे ससार मे एटम बम इत्यादि शस्त्रो के बनाने की होड़ लगी हुई है । ऐसी स्थिति में अहिसा कैसे चलेगी ?

उत्तर—इसीलिए तो आज अहिसा चलनेवाली है । क्राति का जन्म तभी होता है जब ससार मे प्रतिक्रियावादी शक्ति पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है । दूसरी ओर से क्रांतिकारी शक्ति का जन्म होते ही प्रतिक्रियावादी शक्ति आत्मरक्षा की अंतिम चेष्टा मे अपनी शक्ति भर विराट रूप धारण करती है । कंस का अत्याचार बढ़ने पर कृष्ण का जन्म हुआ और कृष्ण का जन्म लेते ही कंस का अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया । लेकिन आपने देखा कि बालक कृष्ण को पालनेवाली यशोदा और गोकुलवासी, कस के अत्याचार से किंकर्त्तव्यविमूढ नही हुए और विश्वास के साथ कृष्ण को मक्खन खिला-खिला कर मजबूत किया । पुराण की कहानी मे कस-विनाशकारी शक्ति थी और कृष्ण क्रातिकारी ।

उसी प्रकार आज के युग मे हिसा की विनाशकारी शक्ति को बढते देख गाधीजी ने अहिंसा की क्रातिकारी शक्ति पैदा की । तभी से हिंसा के विकास की भी तेजी बढी । आप लोग जो अपने को क्रातिकारी कहते है, उन्हे इस हिंसा का विकास देख कर घबड़ाना नही चाहिए, बल्कि गोकुलवासी की तरह विश्वास के साथ अपनी जिन्दगी और तपस्या से सींचकर इस क्रातिकारी

शक्ति को बढाना चाहिए। फिर आप देखेंगे कि आज हिंसा चाहे जितना विराट रूप धारण किये हुए हो, उसकी समाप्ति अवश्यम्भावी है।

प्रश्न—आपने वर्ग-परिवर्त्तन की बात की है, वर्ग-संघर्ष को कतई स्थान नही दिया है। इससे आपने सृष्टि के एक बुनियादी तत्त्व को ही इन्कार किया है। आखिर वर्ग-संघर्ष भी तो अहिंसक ढग से किया जा सकता है। गाधीजी और विनोबाजी भी तो हमेशा सत्याग्रह की बात करते है। क्या यह सघर्ष का ही अहिंसक रूप नही है?

उत्तर—मालूम होता है कि आप अभी भी रूढ विचार के बाहर नहीं निकल पा रहे है। नई क्राति की बात समझने के लिए स्वतंत्र विचार की आवश्यकता है। आखिर उद्देश्य क्या है? साम्य की प्रतिष्ठा या वर्ग-संघर्ष? वस्तुतः कठिनाई यह है कि अधिकाश लोग अपने सामने गणेशजी जैसी एक मूर्ति रखकर अहिंसक क्राति की आराधना करना चाहते है—यानी हिंसा के आधार पर जो धारणाए और मूल्याकन रूढ हो चुके है, उसके सारे कलेवर को ज्यों-का-त्यों कायम रखते हुए उसके सिर से हिंसा काट कर अहिंसा रख देने मात्र मे ही अहिंसक क्राति की मूर्ति बन जाती है, ऐसा मानते है। लेकिन बात ऐसी नही है। अहिंसक क्राति एक स्वतंत्र तथा मौलिक वस्तु है। आखिर अहिंसा में सघर्ष कहा? अहिंसा के मूल मे तो सहयोग ही है।

वस्तुतः आप लोग जो यह समझ बैठे है कि प्रकृति का मूल तत्त्व संघर्ष ही है, उसीमें गल्ती है। ऐसा समझना पश्चिमी एकागी विचार के असर का नतीजा है। हा, इतना आप कह सकते है कि प्रकृति मे संघर्ष भी है। लेकिन संघर्ष और सहयोग में सहयोग की ही प्रधानता है। प्रकृति के सारे हिस्से एक दूसरे से बंधे है और उनमें सामंजस्य तथा सतुलन है। वह वस्तुस्थिति ही सहयोगिता का प्राधान्य साबित करती है। अगर संघर्ष की प्रधानता होती तो सारी सृष्टि कब की बिखर गई होती।

यह सही है कि अहिंसा के क्षेत्र में भी विचार-भेद होता है, लेकिन इस भेद से विचार-संघर्ष पैदा नहीं होता, बल्कि विचार-मंथन होता है। मंथन के नतीजे से आचार निर्दिष्ट होता है और सहयोग के आधार पर यह

आचार मूर्तिमान होता है ।

आपके प्रश्न से दीखता है कि गांधीजी या विनोबाजी के सत्याग्रह की बात पर आपने गहराई से सोचा नहीं है । इसलिए जरूरी है कि आपको सत्याग्रह और संघर्ष के बारे में स्पष्ट धारणा हो । सत्याग्रह का मतलब विरोध नहीं है । सत्य के लिए आग्रह—यही सत्याग्रह है । हम इस सत्य को मानते हैं कि भूमि उसके पास होनी चाहिए जो उसपर परिश्रम करे । इस सत्य को स्थापित करने के लिए घर-घर भूमि मागना सत्याग्रह है और निर्भर होकर अपने हक पर डटे रहना भी सत्याग्रह है । अगर कोई किसान बेदखल होता है और निर्भय होकर वह उस जमीन पर डटा रहता है तो विरोध वह किसी का नहीं करता है । सिर्फ इतना ही करता है कि कापुरुष जैसा अपने हक को छोड़कर भाग नहीं जाता ।

संघर्ष में दोनों पक्षों की ओर से वार होता है । सत्याग्रह में ऐसा नहीं होता । सत्याग्रही अपने सत्य-पक्ष पर स्थिर रहता है और दूसरे पक्ष के वार से दबने से इन्कार मात्र करता है । यह संघर्ष नहीं, सत्याग्रह है । जो लोग अहिंसक क्रांति की बात सोचते हैं उन्हें इस तत्व को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, अन्यथा वे अहिंसा का नाम लेते रहेंगे, लेकिन पुरानी धारणाओं के कारण अपने काम में दिशा-भ्रष्ट होकर प्रच्छन्न हिंसा की ओर बहकेंगे । अन्ततोगत्वा वे विफलता के गर्त में गिरेंगे और परिस्थिति को प्रतिक्रांतिकारी शक्ति के हाथ में सौंप देंगे ।

प्रश्न—आप भी शासनहीन और वर्गहीन समाज की बात करते हैं, फिर आपमें और कम्युनिस्टों में क्या फर्क है ?

उत्तर—कम्युनिस्ट ऐसी बात करने में सिर्फ स्वप्न-द्रष्टा है और हम व्यावहारिक स्थिति की बात सोचते हैं । कम्युनिस्ट कहते हैं कि वे शासनहीन समाज कायम करना चाहते हैं, लेकिन वे करते हैं नित्य प्रतिदिन शासन का अधिकतर संगठन । वे कहते हैं कि इस प्रकार शासन संगठन पूर्ण होने पर आखिर में सूख जायगा । वैज्ञानिक तत्व के अनुसार शायद यह सही है, क्योंकि विज्ञान कहता है कि किसी का पूर्ण विकास हो चुकने

का अवसर अवश्य रहेगा, लेकिन किसी के लिए कोई काम खास नही माना जायगा।

कम्युनिस्ट उत्कट केन्द्रीकरण के द्वारा अलग से एक विराट व्यवस्थापक वर्ग की सृष्टि कर रहे हैं। इस तरह वे हेड्स (*Heads*) और हेड्स (Hands) के वर्गीकरण से वर्ग-विषमता मिटाने के बजाय उसे मजबूत करते जा रहे हैं। रेलों के डिब्बों में जैसे फर्स्टक्लास, सेकेंडक्लास, इंटरक्लास और थर्डक्लास है, उसी तरह समाज में भी चार वर्ग है — सामन्त वर्ग, पूजीपति वर्ग, व्यवस्थापक वर्ग और शरीर-श्रमिक वर्ग। केवल फर्स्ट और सेकेंड क्लास हटाने से ही काम नही चलेगा। इंटरक्लास भी हटा कर समाज में शुद्ध जनता एक्सप्रेस चलानी होगी।

प्रश्न—आपने कहा है कि हम लोगो ने अंग्रेजों के साथ युद्ध किया है, क्राति नही की। फिर वह राजनैतिक क्रांति किस दिशा में होगी और उसका स्वरूप क्या होगा?

उत्तर—आजकल दुनिया का राजनैतिक ढाचा उलट गया है। किसी भी पेड़ की जड वहां रहती है, जहा से वह पोषण लेता है और उसकी फुनगी आरामान की ओर रहती है। आज का राजनैतिक वृक्ष देहातों से पोषण लेता है, लेकिन उसकी जड़ है दिल्ली मे और फुनगी देहातों में, अर्थात् आधुनिक राजनीति शीर्षासन कर रही है। कभी-कभी २-४ मिनट तक शीर्षासन करना तो अच्छा होता है और इससे शरीर का तेज भी बढता है, लेकिन अगर कोई स्थायी रूप से शीर्षासन ही करता रहे तो उसके सिर पर खून चढ जायगा। राजनीति में भी अगर एकाध बात की जड दिल्ली में रहे तो ठीक है, उससे समाज में तेजस्विता भी आ सकती है लेकिन आज की राजनीति चूंकि अनवरतरूप से शीर्षासन ही करने लगी है इससे उसके सिर पर खून चढ गया है। नतीजा यह कि संसार के राष्ट्रो में तानाशाही का जमघट हो रहा है और युद्ध की तैयारी की होड़ लग रही है।

राजनैतिक वृक्ष को उलट कर उराकी जड देहातों में करना ही हमारी राजनैतिक क्रांति है। इसके लिए आपको अपने विधान में आमूल

परिवर्तन करना होगा। आज सविधान सभा दिल्ली में बैठती है। सर्वोदय विधान बनाने के लिए प्रथमतः यह सभा देहातो में बैठेगी। देहात के लोग अपनी शक्ति के अनुसार ग्रामराज्य की जिम्मेदारी तय करेंगे और शक्ति के बाहर के मदों को ऊपर की जिम्मेदारी के लिए आगे बढायंगे। जिला सभा उसमें से अपनी शक्ति के अनुसार जिम्मेदारी रखकर बाकी आगे बढ़ायगी। इस तरह क्रमशः आगे बढते हुए आखिरी वक्त के अन्तर्राष्ट्रीय सभा तक पहुंचने पर अखडविश्व (One World) की कल्पना मूर्तिमान होगी।

हो सकता है कि देहाती सभाओं के प्रतिनिधि, जो जिलों में मिलेंगे, बाद को देहाती जिम्मेदारियों में किंचित् हेरफेर करके उनमें कुछ समानता लावें और उसी तरह उससे ऊपरवाले नीचेवालों का मार्ग-दर्शन करें। लेकिन मूलत. सविधान का ढाचा इसी तरह से बनाना होगा।

प्रश्न—आपकी बातो से ऐसा दीखता है कि आप पार्लमेंट्री शासन को गणतत्र के रूप में स्वीकार नहीं करते। आखिर उसमें दोप क्या है?

उत्तर—मैंने पहले ही कहा है कि पूरी पार्लमेंट दंड-शक्ति की मूर्ति है और विरोधी दल भी उसी का एक बाजू है। पार्लमेंट्री पद्धति में स्वतंत्र शिव-शक्ति की कही गुजाइश नही है। नतीजा यह होता है कि जनता तकलीफ होनेपर भी कोई स्वतत्र कदम नही उठा सकती। जैसे रोगी तकलीफ होने पर करवट बदलता रहता है उसी तरह परेशान जनता पार्टी बदलती रहती है।

इसके *अलावा इसमें एक बहुत बडा व्यावहारिक दोप है।* पार्लमेंट्री पद्धति में जनता की शक्ति और कोप का अपव्यय होता है। एक पार्टी आती है, कुछ योजना बनाती है, उसके लिए राष्ट्र की शक्ति और संपत्ति खर्च करती है और फिर दूसरी पार्टी आकर उसको रद्द करके दूसरी योजना बनाती है।

इस तरह योजनाओं की कबड्डी खेलकर राष्ट्रीय साधन की कितनी बर्वादी की जाती है, इसका अन्दाज आप लगा सकते हैं। इसके उदाहरण में

लिए दूर जाने की जरूरत नहीं है। पार्लमेंट्री पद्धति को माननेवालों के लिए ब्रिटिश पार्लमेंट एक उत्कृष्ट मिसाल है। पिछले दिनों इस्पात उद्योग के राष्ट्रीयकरण के मामले में उसी इंग्लैंड में क्या दशा हुई, यह आप सबको पता ही है।

प्रश्न—विनोबाजी कहते हैं कि भूमि किसी की संपत्ति नहीं है, वह ईश्वर की है। क्या ईश्वर आकर उसकी व्यवस्था करेगा? आखिर भूमि का समाजीकरण आवश्यक है। सर्वोदय-सिद्धात के अनुसार इसका स्वरूप क्या होगा?

उत्तर—इसका जवाब तो विनोबाजी ने खुद दिया है—भूमि का ग्रामीकरण होगा। लेकिन इस ग्रामीकरण शब्द से भी भ्रम होने की संभावना है। ग्रामीकरण तीन तरह का हो सकता है :

१. सारी भूमि ग्राम-पचायत की हो, पंचायत खेती करे, गांव के लोग उसपर मजदूरी करें। खेती में जो बचत हो वह पंचायत की आय हो और उस आय से पंचायत ग्राम की भलाई और व्यवस्था का काम चलावे।

२. सारी जमीन ग्राम पचायत की हो और मब लोग उसपर सहकारी खेती करें। परिवारो के चालू खर्च को चलाने के लिए लोग कुछ दैनिक मजदूरी भी लेते रहें, लेकिन बचत श्रम के अनुपात से आपस में बाट लें। गांव की व्यवस्था के लिए लोग व्यक्तिगत कर दें।

३. जमीन सब पंचायत की हो। पंचायत परिवारों की आवश्यकता तथा क्षमता के अनुपात से भूमि का वितरण करे और लोग मुख्यतः व्यक्तिगत खेती करें। सिंचाई आदि कुछ कामों के लिए आवश्यकता पड़ने पर आंशिक या पूर्णतया सहकारी पद्धति चलायं। पंचायत कुछ जमीन सार्वजनिक भूमि के रूप मे रखे, जिसपर खेती श्रमदान-यज्ञ से हो और उसकी उपज से सार्वजनिक कार्य तथा ग्रामव्यवस्था चले।

जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, सर्वोदय, सामाजिक-व्यवस्था कायम रखते हुए हरेक व्यक्ति का पूर्ण विकास चाहता है। इस उद्देश्य की सिद्धि में तीसरा तरीका ही उपयोगी सिद्ध होगा। व्यक्ति के अलग से

खेती करने पर उसमे स्वतत्र प्रेरणा-शक्ति का विकास हो सकेगा और साथ-साथ गांव की सामूहिक खेती के लिए नियमित रूप से श्रम-यज्ञ में आहुति देते रहने से उसमे सहयोग-वृत्ति तथा सामाजिकता का विकास होता रहेगा; अर्थात् व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रगति के साथ सामाजिकता का सामंजस्य होने पर मनुष्य तथा समाज का सन्तुलित विकास होता रहेगा।

प्रश्न—भूमिदान-यज्ञ से भूमि का बंटवारा हो जायगा, यह तो समझ में आता है, लेकिन आज जो बडे-बडे पूजीपतियो के पास संपत्ति पडी है उसका बटवारा कैसे होगा और उसके लिए आप कौन-सा कार्यक्रम और आदोलन चलाना चाहते हैं।

उत्तर—इसी के लिए तो विनोवाजी ने संपत्ति-दान की बात शुरू की है। *कोई भी व्यावहारिक क्रातिकारी एक-एक करके कदम उठाता है।* विनोवाजी ने पहले भूमिदान-यज्ञ आदोलन शुरू किया। जब उन्हें मालूम हो गया कि भूमिदान-यज्ञ का पैर जम गया तो सपत्तिदान की बात की और अब इस पर जोर भी देने लगे है। यह सही है कि अभी आमदनी का ही छठा हिस्सा मागा जा रहा है, लेकिन विनोवाजी हमेशा कहते है कि उनकी *यह माग पहली किस्त की माग है। उन्हीके शब्दों में कहें तो वे संपत्ति के* अन्दर एक फच्चर ठोंक देना चाहते हैं। क्रमशः आपको मूल पूजी का दान भी मागना होगा।

दूसरी ओर वे भूमिदान-यज्ञ और केंद्रित उद्योग बहिष्कार को सीताराम की तरह अभिन्न मानते हैं। भूमि-वितरण-आदोलन के तरीके से और संपत्ति-वितरण-आदोलन के तरीके में फर्क है। अगर किसी राजा से सारी जमीन मिल जाय तो उसे खंडित कर उत्पादकों में बाटा जा सकता है, लेकिन पूंजीपति से अगर सारा-का-सारा कारखाना मिल जाय तो उसके टुकडे करके बाटा नहीं जा सकता। इसलिए इस दिशा में दोरंगा आदोलन चलाना पडेगा। एक ओर से संपत्तिदान तथा पूंजीपतियों से संपत्ति और पूंजी का दान मागना होगा और दूसरी ओर से केंद्रित उद्योग के बहिष्कार और ग्रामोद्योग के संगठन का आन्दोलन चलाकर उद्योगों को *विकेंद्रित*

करना होगा। देश के विकेंद्रित उद्योगीकरण के बाद लोगों के पास जो पूजी एकत्रित हुई है वह अनुत्पादक होकर खत्म हो जायगी। संपत्तिदान-यज्ञ से इस प्रकार की पूजी के खत्म होने की प्रक्रिया में वेग आयगा।

यह सही है कि कुछ ऐसे उद्योग रह जायंगे, जिन्हें केन्द्रित ढंग से ही चलाया जा सकता है। ऐसे उद्योग पूजी-निरपेक्ष नही हो सकेंगे। ऐसे उद्योगों को श्रमिकों की सहकारी समिति के हाथ मे सौंपना होगा। संपत्ति-दान यज्ञ का आन्दोलन आगे बढने पर आपको पूरा-का-पूरा कारखाना भी मिलेगा। और जैसे पूरा-का-पूरा गाव मिलने पर उसकी व्यवस्था हम अपने आदर्श के अनुसार चलाने की कोशिश करते हैं उसी तरह पूरा-का-पूरा कारखाना मिलने पर उसे सामूहिक रूप से श्रमिकों द्वारा चलवाने का प्रयोग भी करेंगे और क्रमशः सारे अनिवार्य केंद्रित उद्योगो को श्रमिकों के हाथ में सौंप देने का आंदोलन चलायगे। ये सब कार्यक्रम संपत्तिदान-यज्ञ के अन्तर्गत हैं।

पुरानी धारणा के अनुसार आप कह सकते हैं कि ये सरकार के हाथ में क्यों न जाय। लेकिन जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, अगर आपको शासनहीन समाज कायम करना है तो सारा कार्यक्रम उसी दिशा में होना चाहिए। हमको दड-शक्ति को क्षीण करने की बात सोचनी चाहिए, न कि उसे मजबूत करने की। वर्षों से देश के नेता शासन और न्याय-विभाग को अलग करने का आन्दोलन कर रहे हैं। हम ऐसा क्यों चाहते हैं? इसलिए कि हमारी राय में अगर शासन और न्याय एक ही हाथ में रहेगा तो न्याय-शक्ति को शासन के क्षेत्र में इस्तेमाल किया जायगा। इसी तरह अगर हम दमन का साधन और उत्पादन का साधन एक ही हाथ में रखेंगे तो उत्पादन को दमन के काम में लाकर दंड-शक्ति अपने को मजबूत बनाने की कोशिश करेगी। यही कारण है कि हम अनिवार्य केंद्रित उद्योगों को भी सरकार के हाथ में न रखकर जनता द्वारा चालित स्वतंत्र और सामूहिक संस्था के हाथ में सौंपना चाहते हैं।

प्रश्न—पश्चिमी औद्योगिक मुल्कों में भी विकेंद्रीकरण की बात की जा रही है, तो उसमें और सर्वोदयी विकेंद्रीकरण में क्या फर्क है?

उत्तर—पश्चिम में जो विकेंद्रीकरण की बात करते हैं उसमें उत्पादन की पद्धति बदलने की बात नही है। वे पूजीवादी पद्धति को बदल कर श्रमवादी पद्धति नही कायम करना चाहते। उनका विकेंद्रीकरण भौगोलिक है, यानी बम्बई में सारी कपड़े की मिल न होकर जिन इलाको में रुई पैदा होती है उन इलाकों में जगह-जगह एक-एक मिल रखी जाय।

एक दूसरे किस्म का विकेंद्रीकरण जापान में चल रहा है। उसमें कुछ-कुछ कुटीर-उद्योगों की बात भी है, लेकिन वह पूजी-निरपेक्ष स्वावलम्बी पद्धति नही है। वह केंद्रित पूजी सचालित दस्तकारी पद्धति है।

प्रश्न—लेकिन आज के वैज्ञानिक युग में ग्रामोद्योगी विकेंद्रीकरण कैसे चलेगा? क्या आप विज्ञान को स्वावलम्बन की बलिवेदी पर चढाना चाहते है?

उत्तर—यह सवाल प्राय: सभी आधुनिक पढ़े-लिखे लोगो के दिमाग में आता है। इसका कारण यह है कि लोग विज्ञान का मतलब नही समझते। विज्ञान कोई एकागी वस्तु नही है, वह तो प्रकृति के सर्वांगीण नियम के आधार पर बना है। किन्तु लोगों ने शायद विज्ञान का मतलब सिर्फ यंत्र-शास्त्र समझ लिया है। विज्ञान केवल यत्र-शास्त्र नही है। राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, शरीर-तत्त्व आदि सब विज्ञान के विभिन्न अंग हैं। जो चीज विज्ञान के सारे अंगों का सामंजस्य नही रख सकती वह अवैज्ञानिक है। कोई यंत्र यंत्र-शास्त्र के अनुसार पूर्ण होने पर भी यदि राजनैतिक, आर्थिक या मनोवैज्ञानिक सतुलन की रक्षा नही कर सकता तो वह अवैज्ञानिक यत्र है और उसका इस्तेमाल विज्ञान के खिलाफ है। इसलिए हम उन यत्रों को अवैज्ञानिक मानकर त्याज्य कहते है जिनके प्रचलन से राजनैतिक तानाशाही, आर्थिक बेकारी या अन्यान्य मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक दोषो की सृष्टि होती है। एक छोटी-सी मिसाल लीजिए—खाद्य का वैज्ञानिक उद्देश्य स्वास्थ्य-रक्षा है। अगर किसी किस्म की आटा पीसने या तेल पेरने की मशीन से निकले हुए आटे या तेल का खाद्य-गुण घट जाता है, तो वह मशीन भले ही यत्र के हिसाब से वैज्ञानिक हो, लेकिन खाद्य-उत्पादन

के औजार के रूप में अवैज्ञानिक समझी जायगी । फिर यंत्र-शास्त्र एक शास्त्र है, कोई मशीन मात्र नही है । एक ही वैज्ञानिक नियम से छोटा या बड़ा यन्त्र बनता है । अगर मशीन छोटी हो तो लोगों की धारणा में अवैज्ञानिक है और बड़ी हुई तो वैज्ञानिक हो जाती है, ऐसा सोचना ठीक उसी प्रकार है जैसे देहात के लोग, बैंगन, कुम्हड़ा आदि के मामले में, यदि चीज छोटी हो तो उसे देशी और बहुत बड़ी हो जाने पर विलायती कहते हैं । आपको समझना चाहिए कि छोटी मशीन के आविष्कार में वैज्ञानिक बुद्धि अधिक लगानी पड़ती है ।

दरअसल हम स्वावलम्बन की बलिवेदी पर विज्ञान को बलिदान नहीं करना चाहते, बल्कि आज की दुनिया में वैज्ञानिक विकास के नाम पर विज्ञान की जो हत्या चल रही है, उसे रोकना चाहते हैं ।

प्रश्न—आपने जो बातें कही हैं वे सब ठीक है, लेकिन वे सब दूर की बातें है । अभी लोग अन्न बिना तडप रहे हैं—विदेश से अनाज मंगाना पड़ रहा है । ऐसी हालत में आपने भूमिदान छेडकर 'अधिक अन्न उपजाओ' आंदोलन को पीछे छोड़ दिया है । लोगो के अन्न के बिना मर जाने पर किसे लेकर शासनहीन और शोषणहीन समाज बनेगा ?

उत्तर—ऐसा लगता है कि आपने कृषि का काम नहीं किया है । अधिक अन्न स्टेशनों के पोस्टरों में नही पैदा होता, वह तो जमीन पर ही पैदा होगा । जिसने थोड़ी भी खेती की है या कम-से-कम खेती का काम देखा है उसको मालूम है कि जो किसान अपने हाथ से खेती करते है उनकी पैदावार उन किसानों से कहीं अधिक होती है जो मजदूर द्वारा खेती करवाते हैं । वह भूमिहीन मजदूर जो दूसरे के खेत में काम करता है जब अपना खेत जोतेगा तो उसमें स्वभावतः अधिक पैदा होगा । भूमिदान यज्ञ का उद्देश्य जमीन की पैदावार उसीको देना है, जो उसपर श्रम करता है । इससे पैदावार बढ़ेगी या नहीं, यह आप खुद सोच सकते हैं ।

प्रश्न—भूमिदान-यज्ञ से भूमिहीनों को जमीन मिल जाने पर जो जमीन भूमिवानों के पास रह जायगी उसके लिए मजदूर की तंगी होगी । तो

इससे उत्पादन में कमी तो होगी ही न ?

उत्तर—आखिर वही मजदूर सारी जमीन आज जोतता है न ? उसमें से थोड़ी-सी अगर मजदूर की मिल्कियत मे चली जायगी तो जो शक्ति अबतक गाव की सारी जमीन जोतती थी वह दान द्वारा प्राप्त थोड़ी-सी जमीन में खप जायगी, यह हिसाब आपने कैसे मान लिया ? फिर आप ही लोग यह भी कहते हैं कि देश मे बेकारी है। इसके अलावा तथ्य यह है कि भूमिदान-यज्ञ से देश में जो मानसिक क्रांति हो रही है और जिसके नतीजे से लोग यह बात समझ रहे हैं कि सबको श्रम करना ही है, वह क्रांति भूमिवानों को भी जमीन पर श्रम करने के लिए प्रेरित करेगी। जो लोग अबतक केवल मजदूर पर भरोसा करते थे वे जब थोड़ा-थोड़ा भी जमीन पर खुद काम करने लगेंगे तो उनके हिस्से की जमीन की भी पैदावार बढ़ेगी। मालिक के साथ काम करते देख मजदूर भी अधिक उत्साह से काम करेगा। तब मजदूर मजदूर बनकर नहीं, सहकारी बनकर मदद करेगा।

प्रश्न—अबतक आपने सर्वोदय-विचार क्रांति की बात की, लेकिन दंडनिरपेक्ष तथा पूजी-निरपेक्ष समाज की रचना किस तरह से सिद्ध होगी ? *उसके किसी व्यवस्थित कार्यक्रम के बिना हम कार्यकर्त्ता क्या करें ?*

उत्तर—कार्यक्रम तो आदोलन के सिलसिले में परिस्थिति के अनुसार सूझता रहेगा। आज उसका कोई कार्यक्रम नही बन सकता। मुख्य *आवश्यकता यह है कि कार्यकर्त्ताओं का लक्ष्य स्थिर हो और दृष्टि स्पष्ट* हो, फिर कार्यक्रम निकलता जायगा। विनोबाजी खुद ही एक के बाद दूसरा कार्यक्रम देश के सामने रख रहे हैं। फिर भी आपके समझने के लिए मैं एक सामान्य दिशा-निर्देश कर देता हू। भूमिदान-यज्ञ के कार्य में आपने आंदोलन का पहला कदम उठा लिया है। साथ-साथ केन्द्रित उद्योग बहिष्कार तथा सपत्ति-दान-यज्ञ का कार्यक्रम भी आपके सामने है। मान लीजिए, आप किसी थाने के कार्यकर्त्ता हैं। पहले आप विचार-प्रचार के साथ-साथ भूमिदान मागेंगे। जब देखेंगे कि कुछ जमीन मिल गई है तब आप जमीन पर जाकर उसका अध्ययन करेंगे। उसमें

कुछ परती होगी, कुछ ऐसी जमीन होगी जिसमें पानी की व्यवस्था करनी है, कुछ ऐसी भी जमीन होगी जो झगड़े की है, अर्थात् अधिकाश जमीन पर कुछ-न-कुछ समस्या है। इन समस्याओं के समाधान में आपको गाव के लोगो को संगठित करना होगा। इस संगठन के रूप में आप ग्रामराज्य स्थापना के लिए क्रांतिकारी इकाई की नींव डाल देंगे।

शुरू-शुरू में अच्छा यह होगा कि आप श्रमदान-यज्ञ का कार्यक्रम चलावें। इसमें आप गाव की सब श्रेणियो को शामिल कर सकेंगे। श्रम-दान यज्ञ द्वारा परती जमीन तोडना, तालाव खोदना, बांध बांधना आदि कार्यक्रम हाथ मे ले सकते हैं। जो लोग श्रम-दान मे साथ काम करेंगे उनमें विचार-क्राति फैलेगी। आप भी बातचीत में अपनी सारी योजना बतायेंगे। धीरे-धीरे जो लोग नियमित रूप से समय देनेवाले हैं उनकी एक श्रमदान-यज्ञ समिति बन जायगी और जैसे-जैसे इस समिति का काम ठोस होता जायगा वैसे-वैसे केंद्रित उद्योगों के बहिष्कार का संकल्प-पत्र भरवाना, ग्रामोद्योग का संगठन और प्रौड-शिक्षा आदि कार्यक्रम हाथ में लिया जा सकेगा। इस प्रकार श्रमदान यज्ञ से शुरू करके आप स्थानीय नेतृत्व तथा प्रेरणा पैदा करके एक संगठन खडा करेंगे। फिर वही संगठन क्रमश: पूंजी तथा दड-निरपेक्ष समाज कायम करने की दिशा में निश्चित आंदोलन चलायगा। इसका स्वरूप सामान्यतः निम्न प्रकार का होगा :—

१. **पूंजी-निरपेक्ष समाज**—सबसे पहले अन्न-वस्त्र-बहिष्कार आंदोलन के लिए समिति के सदस्य बहिष्कार के संकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे। फिर गाव के लोगों को समझाकर दूसरों से भी ऐसा संकल्प-पत्र भरवायगे। उसके लिए जलूस, सभा आदि का आयोजन भी करना होगा। समय-समय पर गाव के लोगो की चर्चा-मडली चलानी होगी। जैसे-जैसे जन-मानस तैयार होगा और संगठन-शक्ति बढ़ेगी, केंद्रित उद्योग से उत्पादित अन्न-वस्त्र की चीजों की बिक्री पर पिकेटिंग करना होगा। एक यास्ते में ग्रामो-द्योग का संगठन तथा केंद्रित उद्योग-बहिष्कार से गाव को अपनी आवश्यक-ताओं की पूर्ति के लिए स्वावलम्बी बनाना होगा ताकि पूंजीवाद के नागपाश

से वे बाहर निकल सकें।

२. **दंड-निरपेक्ष समाज**—*आर्थिक आदोलन में काफी प्रगति होने* का मतलब है गाव के संगठन का मजबूत बनना। फिर वह सगठन राजनैतिक आदोलन का काम भी करेगा। राजनैतिक आदोलन का मतलब आप जो समझते है, वह नही है अर्थात् गाव का वह संगठन दूसरों के हाथ से दड छीनकर अपने हाथ में लेने की कोशिश नही करेगा, बल्कि समाज से दड की आवश्यकता के खत्म करने का आंदोलन करेगा। इसके लिए ग्राम *समिति को सरकार द्वारा संचालित महकमो की सूची बनानी पडेगी और* उसमे से कुछ व्यवस्था छाटकर उसको चलाने की जिम्मेदारी समिति को सारे गाव के सहयोग से अपने ऊपर लेनी होगी। ऐसी समितियों का सगठन आप थाने भर मे करें। जब ऐसी समितियो का सगठन काफी गावों में हो जाय और वे उत्पादन तथा व्यवस्था चलाने की शक्ति हासिल कर लें तो जैसे आप भूमिपतियो से भूमिदान और सपत्तिवालो से सपत्तिदान मांगते है उसी *तरह से सत्ताधारी से सत्ता का दान मांगेगे। ग्राम-समितिया सरकार से* कहेगी कि आपके अमुक-अमुक विभाग की जिम्मेदारी हम सहकार के आधार पर स्वावलम्बी व्यवस्था से चला लेंगे। आप इसकी जिम्मेदारी हम पर सौप दें और उसके लिए आप अपना इतजाम इस इलाके से उठा लें। आपकी इतनी जिम्मेदारी कम होने के कारण, उस मद में जिस अनुपात से खर्च होता है उतना कर इस इलाके से घटा दें। स्वभावतः इस लोक-युग में सरकार इसे *मानेगी*। लेकिन अगर सरकार की प्रकृति सर्वाधिकारवादी हुई तो वह इसे नही मानेगी। वह इन जिम्मेदारियों के बहाने जनता पर निरन्तर हावी रहना चाहेगी। वैसी हालत में जनता को यह कहने का हक होगा कि चूकि अब हमें आपकी अमुक सेवाओ की आवश्यकता नही रही, इसलिए उस सेवा के लिए हम अबतक जो मेहनताना देते रहे वह अब नही देंगे, यानी वे उस अनुपात *में टैक्स देने से इकार करेंगे।*

इस प्रकार का आदोलन देशव्यापी होने पर कोई भी सत्ताधारी अपनी सत्ता को जबर्दस्ती जनता पर नही लाद सकता। लेकिन मुझे विश्वास

है, ऐसा आंदोलन चलाने लायक संगठन गाव-गांव में बन जाने पर करबन्दी आंदोलन तक पहुंचने की आवश्यकता ही नही होगी। इससे पहले ही मुल्क में जो वातावरण पैदा होगा उससे देश के विधान में परिवर्तन हो जायगा।

प्रश्न—इस प्रकार का रचनात्मक काम तो गावों में तीस साल से चल रहा है। चरखा संघ, ग्रामोद्योग सघ आदि संस्थाए भी काफी दिनो से काम कर रही है, लेकिन आप जो बात कह रहे है उसका दर्शन तो कही नही हो रहा है, फिर इस तरह समस्या का हल कैसे होगा ?

उत्तर—अबतक हम जो काम करते आये हैं उसमें क्रांतिकारी दृष्टि नही रही है। शुरू में हमने आजादी की लडाई के लिए जनता को तैयार करने के उद्देश्य से जन-सपर्क साधने के एक जरिये के रूप में इसे चलाया। फिर गरीबों को कुछ राहत पहुंचाने की दृष्टि से काम किया।

राहत की दृष्टि और क्रांतिकारी दृष्टि का फर्क आपको समझ लेना चाहिए। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। अगर आप कही मिट्टी का एक टीला बनाते है तो किसी जगह गड्ढा करना पड़ता है। फिर गड्ढे में पानी आदि सड़ने पर उसे पाटने की बात सूझती है। लेकिन साथ ही टीले को भी रखना चाहते है। ऐसी हालत में टीले मे से थोडी-थोड़ी मिट्टी निकाल कर अगर गड्ढे पर डाल दे तो गड्ढा भरता नही और फिर जल्दी ही बदबू होने लगती है। गड्ढा तो तभी पट सकता है जब पूरा टीला उसमें डाल दिया जाय।

उसी तरह आप बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े-बडे शहरों में संपत्ति के जो ऊंचे टीले देख रहे है वे देहातो में गड्ढे करके बने है। हम कुछ परोपकारी वृत्ति वाले लोग जब देहाती जनो की तकलीफ देखते है तो उसे दूर करने की सोचते है। इसके लिए हम कलकत्ता, बम्बई के टीलों से दो-चार हजार या एकाध लाख की संपत्ति माग कर ले आते है। फिर, खादी, ग्रामोद्योग आदि कार्यक्रम चलाकर उन्ही श्रीमानों के हाथ में बेचकर देहाती-जनों में से शोषित संपत्ति का एक अति अल्प टुकड़ा उन्हें वापस दिलाने की कोशिश करते है। इससे दो-चार-दस व्यक्तियों को भले ही कुछ राहत मिल जाय,

लेकिन समस्या का हल नही होता। समस्या का हल तो पूर्ण बहिष्कार कर देहातो के शोषण का रास्ता बन्द करने से ही होगा। यानी अब हमें राहत के काम से संतोष न मानकर क्रांतिकारी दृष्टि से काम करना होगा।

यहा पर फिर साध्य और साधन की बात आती है। क्रांतिकारी का अपना जीवन ही उसके लिए साधन होता है। इसलिए अगर क्रांति करनी है तो आपको अपनी जिन्दगी मे भी क्रांति करनी होगी। अबतक हम लोग अपने जीवन में क्रांति न करके त्याग करते रहे। इस प्रकार, त्याग और क्रांति मे क्या फर्क है, यह समझ लेना चाहिए। लोक-सेवा के लिए जीवन का स्तर कुछ नीचे उतार लेने मे त्याग अवश्य होता है, लेकिन क्रांति नही होती। क्रांति तो जीवन का तर्ज बदलने में होती है। इसे और स्पष्ट करूं। एक अध्यापक ५००) वेतन पर काम कर रहे है। वे नौकरी छोड़कर १००) पर काम करने लगें तो उन्होने त्याग किया। ऐसा करने मे उन्होने अपने हाथ से कुछ पैदा नही किया। वे अनुत्पादक उपभोक्ता ही रहे, केवल गरीबी को स्वीकार किया लेकिन अगर वे १५०) भी लें और उसमे से २५) यह सोच कर अपनी मेहनत से पैदा करने लगे कि क्रमशः शरीरश्रम द्वारा उत्पादन करके ही गुजारा करेंगे तो अपने को मजदूर बनाने की दिशा में उन्होने सक्रिय कदम उठा लिया, अर्थात् उन्होने अपने जीवन में वर्ग-परिवर्तन की क्रांति शुरू की। इस तरह क्रांति करने में त्याग आ ही जाता है, लेकिन यह कोई जरूरी नही है कि त्याग में क्रांति ही हो।

अबतक हम लोग जो काम करते रहे, उसमे हमारी यह दृष्टि नही रही। आज विनोबाजी साम्ययोग का सिद्धात बताने मे हमें यह नई दृष्टि दे रहे हैं। अगर आप लोग इसी दृष्टि से काम करेंगे तो मेरे कहने के मुताबिक नतीजा अवश्य निकलेगा।

प्रश्न—आपने पार्लामेंट्री पद्धति को हिंसा का ही रूप माना है, लेकिन वर्तमान जनतंत्र में उसके स्थान पर आप कौनसी पद्धति सुझाते है जो पक्षातीत होकर भी सुव्यवस्था बनाये रख सके और पूर्ण रूप मे अहिंसक भी हो?

उत्तर—जबतक पूर्ण रूप से राज्यसंस्था विद्यमान है और यह केंद्रित

भी है, तबतक पार्लामेंट्री पद्धति तो चलेगी, लेकिन मैंने जैसा कहा है, स्वावलंबी समाज में भी राज्य का कुछ अवशेष रह जाता है, अर्थात् आपके प्रश्न के अनुसार राज्य-संस्था का कुछ-न-कुछ अवशेष रह ही जायगा। उसकी पद्धति कौनसी होगी, यही प्रश्न है। वह पद्धति पार्लामेंट्री पद्धति न होकर पंचायत-पद्धति होगी। जैसा कि मैंने पहले भी बताया है, उस पद्धति के विधान केन्द्र से न बनकर समाज की मूल इकाई, यानी गाव से बनेंगे। ग्राम-विधान-सभा निर्णय करेगी कि सामाजिक जिम्मेदारी के कितने हिस्से वह खुद अपनी पंचायत द्वारा चला लेगी। फिर जितना बचेगा, उसे वह जिला-विधान-सभा को अपने एक प्रतिनिधि के साथ भेजेगी। इस प्रकार नीचे से जिम्मेदारी सम्हालते हुए बचत की जिम्मेदारी ऊपर जायगी और अन्त में जो कुछ थोड़ा बचेगा, वह राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय पचायत के जिम्मे रहेगा। ऐसी व्यवस्था स्वभावतः पार्टीगत न होकर व्यक्तिगत रूप से होगी। इस तरह अवशिष्ट राज्य, अवशिष्ट दड के रूप मे रहेगा। लेकिन वह पार्टी-संचालित पार्लामेंट्री सस्था न होकर पार्टी-हीन पचायत-परम्परा का स्वरूप होगा। जब प्रत्येक ग्राम अपना अलग-अलग प्रतिनिधि ऊपर भेजता जायगा, तब क्रमशः सर्वोच्च पंचायत बनेगी, तो उसमें पार्टी टिकट पर चुनाव की गुंजाइश नही रहेगी। तो फिर जितने लोग यहां पहुचेंगे, वे सब स्वतन्त्र सज्जन व्यक्ति होंगे—किसी पार्टी के नहीं।

—गोसेवा साहित्य—

क्र.	पुस्तक	लेखक	मूल्य
१.	The Cow in India Vol I & II	by Satishchandra Das Gupta	१६)
२.	Dead animals to Tanned Leather	,,	॥)
३.	गो सेवा (हिंदी)	महात्मा गांधी	१॥)
४.	गोळाऊ गाईचे सवर्धन (मराठी)	य. म. पारनेरकर	॥)
५.	पशु रोग चिकित्सा (मराठी)	डा. पा. ब. माळी	१॥)
६.	चारादाना (हिंदी)	परमेश्वरीप्रसाद	।)
७.	पशुओं का इलाज	,, ,,	॥)
८.	कल्याण गो-अंक		४॥)
९.	गायो की उन्नति (हिंदी) (डा. राजेंद्रप्रसादजी का भाषण)		≡)
१०.	नकली घी (हिंदी व अंग्रेजी)		।=)
११.	गो-सेवा-संघ (द्वितीय सम्मेलन विवरण १९४६)		।)
१२.	कम्पोस्ट अर्थात् मिश्र खाद		।)
१३.	सर्वांगी गाय		।)
१४.	सायलेज		।)
१५.	जमाया तेल		=)
१६.	दूध उत्पादन की पंचवर्षीय योजना—डा. जा. आर. कोठावाला		।)
१७.	गाय ही क्यो	ला. हरदेवसहाय	१)
१८.	गांय या भैंस	,, ,,	।)
१९.	गो-संकट निवारण	,, ,,	=)
२०.	गो-वध का हेतु	,, ,,	।=)
२१.	चमड़े के लिए गो-वध	कन्हैयालालजी भिंडा	॥)
२२.	मीठा जहर	लाला हरदेवसहाय	≡)
२३.	देश के दुश्मन	,,	।-)
२४.	सिद्ध वनौषधि चिकित्सा		१)
२५.	संतुलित गोपालन		५)
२६.	धान की खेती : जापानी पद्धति		।)

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ, (प्रकाशन विभाग) वर्धा